रामाश्रम सत्संग प्रकाशन (रजि०)

संत प्रसादी

(भाग-१)

परम संत डॉक्टर करतार सिंह साहब

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग प्रकाशन (रजि .)

गाजियाबाद (उ० प्र०)

विषय सूची

1. परिचय
2. स्व निरीक्षण करते रहो
3. संसार का मोह दुख का कारण है
4. व्यवहार प्रेममय होना चाहिए
5. जीवन विश्व प्रेममय हो
6. ईश्वर को पाने के लिए वह राज्य वृत्ति अपनानी होगी
7. निज कृपा के बिना गुरु कृपा नहीं होती
8. अपनी बुराइयों का चिंतन नहीं करना चाहिए ।
9. के चिन्तन केवल अपने इष्ट का करना चाहिए
10. सर्व रोग की औषधी 'नाम'
11. संसार में मोहग्रस्त होना दूसरे जन्म को निमंत्रण देना है
12. सच्ची भावना हो

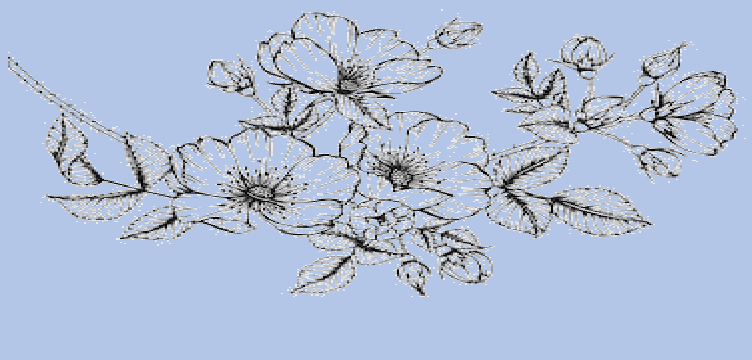

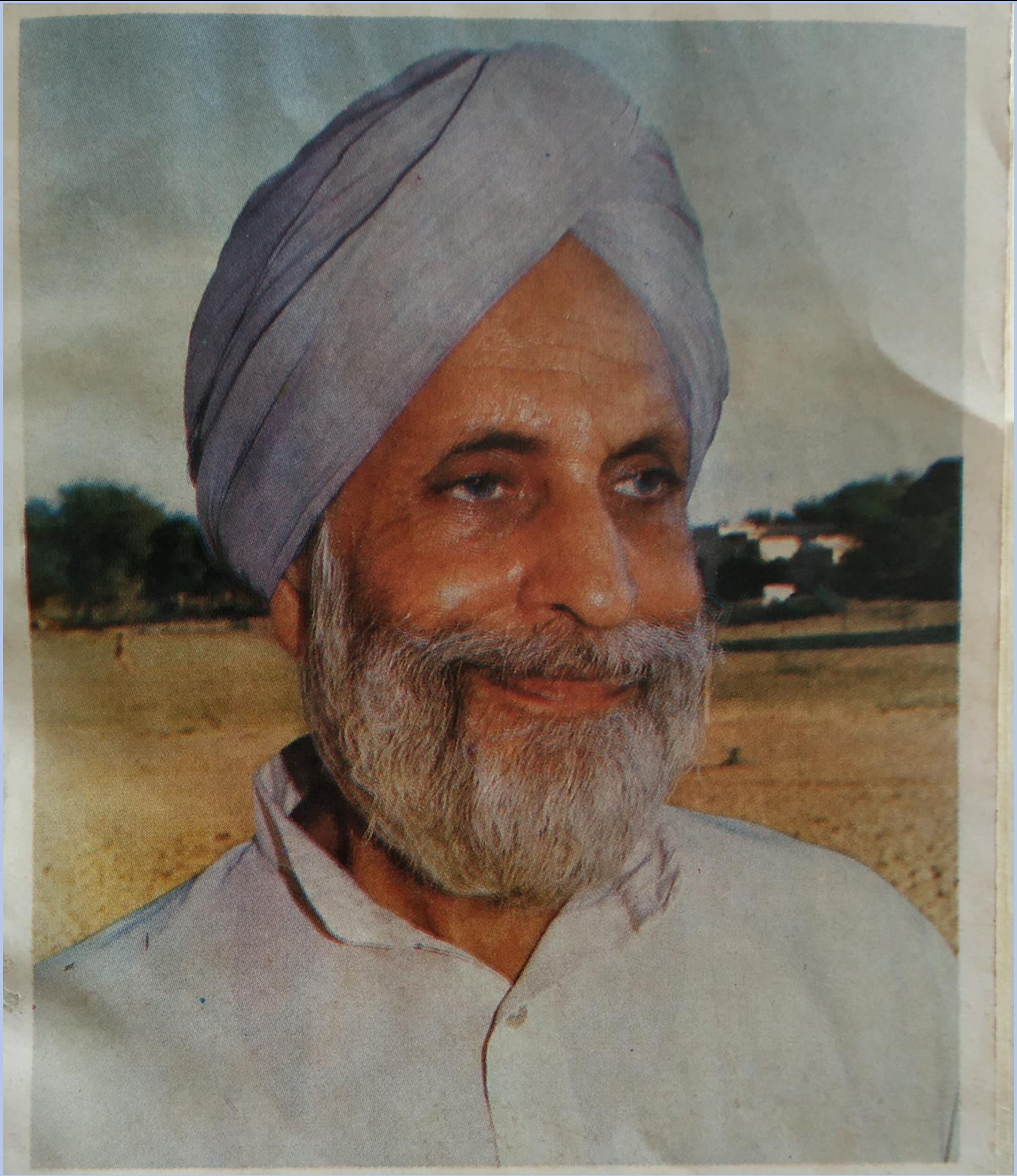

“ अहंकार से प्रभु नहीं मिलते । चाहे कोई भी साधन करिए, दीनता को तो अपनाना हीं होगा ”।

परम संत डॉ॰ करतार सिंह साहब (जन्म 13 जून 1912)

परिचय

वर्तमान युग में महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज (सिकन्दराबाद,उ० प्र०) एक महान संत हुए हैं । आप संतमत के अति उच्च कोटि के आचार्य थे और अपने गुरुदेव परम संत महात्मा रामचंद्र जी महाराज(फतेहगढ़ निवासी) के गुरु मुख शिष्य होने के नाते संत मत की अध्यात्मिक शिक्षा को आजीवन प्रेम, करुणा, दीनता, सेवा और परोपकार की भावना से भूले भटके और जरूरतमंद लोगों तक पहुंचाते रहे और अपने आपको इसी में मेट दिया । यह मिशन रामाश्रम सत्संग के नाम से जाना जाता है । आपने अपने इस मिशन का कार्य अपने शरीर छोडने के बाद भी जारी रखने और फैलाने के लिए डॉ० करतार सिंह साहब, निवासी रामनगर, दिल्ली, को नियुक्त किया ।

सन १९७० में महात्मा श्री कृष्ण लाल जी के महानिर्वाण के पश्चात श्री पुज्य डॉ० करतार सिंह जी (जिनको आगे भाई साहब के नाम से संबोधित किया जाएगा) अपने गुरुदेव के मिशन को तन, मन, धन और सच्ची लगन से दूर-दूर तक जाकर भूले भटके मनुष्यों तक पहुंचा रहे हैं और यह सेवा ही आपका जीवन है । भाई साहब का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है : -

आपका जन्म १३ जून १९१२ को अमृतसर में एक संपन्न सिख परिवार में हुआ । छोटी उम्र में ही आपके पिताजी सरदार संत सिंह साहब ईश्वर को प्यारे हो गए । तब आप साढ़े सोलह वर्ष के थे । एक बहन एक भाई तथा माता जी की देख-रेख का भार अब आप ही के ऊपर था । पंजाब में अपने पोस्ट मैट्रिक प्लस क्लास पास की । सन् १९४७ में आप अमृतसर छोड़कर दिल्ली चले आए और आयकर विभाग में इंस्पेक्टर के पद पर काम किया । इस बीच आपने बी ए तथा लॉ की परीक्षाएं पास की । देश के विभाजन के समय अपने नौकरी छोड़ कर होम्योपैथिक औषधियों का स्टोर, जो दिल्ली में फतेहपुरी में स्थित है, और जिसका नाम उस समय नेशनल होम्यो स्टोर्स था, अपने एक मित्र से खरीद लिया था जो बाद में पाकिस्तान चले गए थे ।

पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लालजी महाराज (जिनका उल्लेख उपर आया है) यद्यपि एलोपैथिक पद्धति के सुयोग्य डॉक्टर थे परंतु अपने दवाखाने में होमियोपैथी औषधियाँ भी रखते

थे, आपकी दुकान पर आते थे पूज्य भाई साहब को नहीं मालूम था कि आप एक महान संत हैं, परन्तु महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (जिन्हें आगे गुरुदेव के नाम से संबोधित किया गया है) ने भाई साहब को पहपहचान लिया और अपनी कृपा दृष्टि गुप्त रूप से उन पर डालते रहे ।

गुरुदेव के कनिष्ठ भ्राता श्री गिरवर कृष्ण जी भटनागर भी आयकर विभाग में अधिकारी थे और भाई साहब के मित्रों में से थे । भाई साहब के एक मित्र श्री राम भार्गव भी आयकर के वकील थे और इन तीनों पुराने साथियों का बहुधा मिलना जुलना हुआ करता था । एक दिन श्री गिरवार कृष्ण जी के तिमारपुर निवास स्थान पर सत्संग का आयोजन था । श्री भार्गव साहब जब सत्संग लाभ उठाने गए तो उन्होंने पूज्य भाई साहब को भी साथ ले लिया । सत्संग की समाप्ति पर भार्गव साहब तो अनुमति लेकर अपने घर चले गए परन्तु भाई साहब को अनुमति नहीं मिली । गुरुदेव ने भाई साहब से कहा कि " सरदार जी, हम आपके घर चलेंगे । " अतः भाई साहब पू० गुरुदेव को अपने घर लाएं । उनका भली प्रकार से नम्रतापूर्वक आतिथ्य किया और इस प्रकार दोनों बिछड़ी हुई आत्माओं का पूर्व परिचय जाग्रत अवस्था में आ गया ।

हमारे यहां संत मत में दो प्रकार के शिष्य होते हैं - 'एक मुरीद और दूसरा मुराद' । ' मुरीद ' उनको कहते हैं जो गुरु से प्रेम करते हैं और उनको गुरु से शनैः शनैः आध्यात्मिक लाभ मिलता है । जितने वे गुरु में लय होते चले जाते हैं उतना ही उन्हें लाभ होता जाता है । इसके विपरीत ' मुराद ' वे शिष्य होते हैं, जिनमें गुरु स्वयं को लय कर देता है । इन्हें 'फिदाई' शिष्य कहते हैं और इन्हीं को 'गुरुमुख शिष्य' भी कहते हैं । ऐसे शिष्य हजारों में से कोई एक दो होते हैं । इनसे गुरुजन अपना आध्यात्मिक कार्य लेते हैं ।

भाई साहब भी ऐसे ही भाग्यशाली 'मुराद' शिष्य रहे हैं । वे अपने गुरुदेव पर जी-जान से कुर्बान थे । ऐसे शिष्य को कुछ साधन नहीं करना पड़ता । गुरु स्वयं उसके लिए साधन करता है । सेवा लेता नहीं, करता है ।

जब शुरू शुरू में भाई साहब गुरुदेव की सेवा में आए तब गर्मी का मौसम था और दोपहर के समय था । गुरुदेव ने कहा "सरदार जी, आप पसीना सुखा लें और विश्राम कर लें" । यह कहकर आप वहां चले गए । स्नानागार में कुएं से अपने हाथों से दो बाल्टी पानी भर कर रखा, एक धुली हुई धोती वहाँ रखी और स्नानागार के बाहर एक जोड़ी चप्पले रख दी । आकर भाई साहब से कहा कि आप स्नान करने जाइए । भाई साहब के मन में संकोच हुआ

क्योंकि आप नहाने के लिए कोई कपड़ा नहीं लाये थे । फिर भी चूंकि आज्ञा थी, स्नान घर में गए हैं और वहां सब सामान पहले से ही तैयार देखकर स्नान किया है और तब गुरुदेव के साथ भोजन करने के लिए आए हैं यह केवल एक छोटा सा उदाहरण है इस बात का कि गुरु अपने गुरुमुख शिष्य की स्वयं सेवा करता है और यही भाई साहब के लिए प्रथम व्यवहारिक शिक्षा थी कि गुरु का जीवन सेवा का जीवन होना चाहिए ।

सन्१९६० में भाई साहब की विधिवत गुरु दीक्षा हुई । अध्यात्मिक शिक्षा भाई साहब को मौन में मिलती रही । जब कभी और भाइयों को गुरुदेव के साथ बातचीत करते देखते, जिसका विषय बहुधा अध्यात्म ही होता था, उसमें भाई लोग अपने अपने अभ्यास की बातें बताया करते थे और गुरुदेव उन्हें खूब समझाते थे, इसे देखकर भाई साहब परेशान होते थे कि गुरुदेव ने मुझे तो कोई विशेष अभ्यास बताया ही नहीं और न ही इस विषय में गुरुदेव मुझसे कोई बात करते हैं । भाई साहब ने स्वयं तो अपनी इस मानसिक स्थिति का कोई चर्चा गुरुदेव से नहीं किया किन्तु गुरुदेव ने उनके मन की बात भांप ली और बड़े प्रेम पूर्वक कहने लगे कि "सरदार जी, आप क्यों परेशान होते हैं । मैं जो कुछकर रहा हूँ सब आप ही के लिए तो कर रहा हूँ ।"

समय व्यतीत होता गया और एक दिन ऐसा आया कि जब गुरुदेव ने भाई साहब से कहा कि सरदार जी, हमारे पास जो कुछ था वह हमने सब आपको दे दिया और जो कुछ आगे मिलेगा वह भी आपको ही देंगे । सन १९५२ में पूज्य गुरुदेव की विशेष कृपा भाई साहब पर हुई थी जब आपको आपको गुरुदेव ने अनामी पुरुष के दर्शन कराए थे । कृतज्ञता के रूप में भाई साहब ने पूज्य गुरुदेव को एक पत्र लिखा था जिसका उत्तर गुरुदेव ने ८ अगस्त सन १९५२ को दिया था और जिसमें प्रसन्नता प्रकट करते हैं गुरुदेव ने लिखा था : -

The very first day you were chosen for the work . May God bring the day when you may be able to do it.

भावार्थ- भेंट के पहले दिन ही आपका चयन सेवा कार्य के लिए कर लिया गया था परमात्मा करें वह दिन शीघ्र आये जब आप सेवा के योग्य बन जाए । भाई साहब ने एक सच्चे और दीन शिष्य के रूप में गुरुदेव के समक्ष अपने आप को समर्पण किया । उनको जो भी आज्ञा दी गई वह उनको अक्षरश: पालन की । धन का मोह इस तरह छुड़ाया कि उसे सरदार जी से धार्मिक कामों में व्यय कराया ।

गुरुदेव के जितने दैवी गुण थे सब के सब भाई साहब में ज्यों के त्यों उतर आए हैं। प्रेम, दीनता, करुणा, दया, और सेवा की भाई साहब जीती जागती मूर्ति हैं। दूसरों के दुःख में दुखी और सुख में सुखी होना आपका स्वभाव है। आप विद्यार्थियों को, विधवाओं को तथा अन्य जरूरतमंदों को बराबर गुप्त दान देते रहते हैं और किसी को इसके बारे में कुछ बताते नहीं है । क्षमा करना आपका स्वभाव बन गया है।

महात्मा श्री कृष्णा लाल जी महाराज ने सन १९६४ में पूज्य भाई साहब को संपूर्ण आचार्य पदवी लिखित रुप में प्रदान की और बाद में लिखित आज्ञा पत्र द्वारा उनकी नियुक्ति अपने स्थान पर की। तब से पूज्य भाईसाहब गुरुदेव के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी तथा रामाश्रम सत्संग (रजि०) के अध्यक्ष, दोनों ही हैसियतों से गुरुदेव के मिशन का सेवा कार्य इस वृद्धावस्था में भी बड़ी लगन और तन्मयता से कर रहे हैं।

उनके प्रवचन जो समय समय पर विभिन्न स्थानों पर दिए गए हैं , संकलित कर लिए गए हैं जिनमें से तिथि क्रम से कुछ प्रवचन इस संत प्रसादी के पहले भाग में छापे जा रहे हैं। इन्हें पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसकी मुझे बहुत खुशी है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में ऐसे और भी संकलन छप सकेंगे जिनको पढ़कर और मनन करके पाठकगण विशेष करके सत्संगी भाई बहनें, आध्यात्मिक लाभ उठाएंगे। इस पुस्तक में अधिकतर प्रवचन टेप किए हुए हैं जिन्हें लिखित रूप से देने में श्री हनुमान दास खीड़िया झुंझुनूं और डॉ शक्ति कुमार सक्सेना (गाजियाबाद) ने बहुत परिश्रम किया है। उनका मैं आभारी हूँ।

दासानुदास --महेश चन्द्र

गाजियाबाद , ४-2-१९८७

स्व निरीक्षण करते रहो

झुंझुनूं, दि:12-12-१९७६ सायं।

जैसा हम कर्म करते हैं वैसा उसका फल मिलता है। परन्तु यह कर्मों का चक्र कब खत्म होगा ? संतों और गुरुजनों ने इसके लिए कुछ साधन बताये हैं इन पर चलकर मनुष्य कर्मफल या कर्म चक्र के प्रभाव से मुक्त हो सकता है। महापुरुषों का कहना है कि सारी मानसिक बीमारियों का कारण मनुष्य खुद हीं हैं। उसमें जो कर्ता भाव है, जो अहम है, उसी के कारण कर्म फल भोगता है। अज्ञान के कारण जो कर्तापन और भोक्तापन का भाव है वही सब मानसिक बीमारियों का कारण है। रावण महापंडित था, बड़ा विद्वान था, परन्तु उसमें एक ही त्रुटि थी, वह थी अहंकार की। अहंकार के कारण उसका ज्ञान, अज्ञान में बदल गया यह। यह नहीं कि वह कोरा था, बहुत उच्चकोटि का विद्वान था। उसने जो पुस्तकें लिखी थी वे अन्य संतों की पुस्तकों से कम नहीं है। उत्तर प्रदेश में गोरखपुर में किसी के पास एक 'रावण संहिता' है। जैसे 'भृगु संहिता' है इसी प्रकार 'रावण संहिता' भी है। यह बड़े उच्च कोटि का शास्त्र है। और भी उसके कई शास्त्र हैं। घृणा के कारण हम लोग उसको पढ़ते नहीं हैं। अहंकार के कारण उसका उच्च कोटि का ज्ञान दूषित हो गया था। उस में मनुष्य को सी अहंकार वृत्ति, अज्ञान वृत्ति, आ गई थी। यही रावण वृत्ति हम सब में हैं। हम जो कुछ करते हैं उसमें सोचते हैं कि "मैं ही करता हूँ"। यदि किसी काम का फल अच्छा हो जाता है तो बड़े ही प्रफुल्लित होते हैं और बखानते हैं कि देखिये साहब, यह काम मैंने किया है, मेरी बुद्धि कितनी तीव्र है, मैं कितना चतुर हूँ, मेरे हीं किये ये सब हुआ है। और यदि किसी काम का फल बुरा हो जाए तो मनुष्य चिंतित हो जाता है, मन में दुख मानता है। दोनों तरफ से मनुष्य अपने चित्त को मलीन कर लेता है। तो हमारे मन में जब तक कर्ताभाव और भोक्ता भाव रहेगा तब तक कर्मों का चक्र और जन्म- मरण का चक्र चलता ही रहेगा और हम भव सागर से कभी भी बाहर नहीं उतर पाएंगे, मुक्त नहीं होंगे, स्वतंत्र नहीं होंगे।

तो मनुष्य करें क्या ? पशुओं में मनुष्य की तरह हीं इंद्रियां होती है परन्तु उनमें से अलग अलग पशुओं की एक इंद्री विशेष प्रबल होती है। जैसे मृग में सुगंधी की इंद्री (नाक)

बड़ी तीव्र होती है । उसके भीतर में कस्तूरी होती है लेकिन बाहर ढूंढते है और उसकी तलाश में शिकारी उसको पकड़ लेता है । हाथी है, उसमें कामना की इंद्री प्रबल होती है, उसी से वह शिकारी के फंदे में फँस जाता है । सांप में श्रवणेन्द्री बड़ी तीव्र होती है जिससे वह सपेरे के बिन के राग में इतना मस्त हो जाता है कि पकड़ा जाता है । परन्तु मनुष्य की पांचों इन्द्रियों और छठा मन यह सब ही बड़े प्रबल होते हैं । सारे मिलकर उसे इस प्रकार जकड लेते हैं कि वह युग युगांतर से कोशिश करता है, अभ्यास करता है कि किसी तरह वह इंद्रियों से मुक्त हो जाए, उनके वशीभूत न हो परन्तु यह सहज नहीं हो पाता । आप सब भीतर में स्व-निरीक्षण करिये और विचार करिये कि आप अपनी इंद्रियों से कितने मुक्त है , आपकी इंद्रियां और मन आपके कितने वश में हैं ? किसी को अधिक बोलने पर बड़ा आनंद आता है तो किसी को खाने में रस आता है । किसी को कानों में निंदा सुनने में बडा आनंद आता है । सबसे ज्यादा इंद्री जो मनुष्य की बड़ी खराबी करती है वह है उसकी आंख । जितना वह आकर्षक रूप-रंग देखता है उसकी प्रतिक्रिया होते होते चित्र पर अक्स बन जाता है । जिसके कारण दिन रात उसके गुणगान में लगा रहता है । यहां तक कि वह गुण-गान इतनी बढ़ जाती है कि जीवन में उसी की प्रतिक्रिया होती रहती है । इसलिए संत तुलसी दास जी कहते हैं और प्रार्थना करते हैं की हे प्रभु ! न तो मेरे पास बाहुबल है, न बुद्धि- बल, न राजनीति का बल है, मेरे तो आप ही निर्बल के बल राम हैं , मैं तो दास हूँ । गुरु नानक देव कहते हैं - “कहूँ नानक मैं नीच करम्मा” मेरे तो कर्म हीं बड़े नीचे हैं, मेरे पास एक ही साधन है, वह ‘प्रार्थना’ ।

गीता के अंत में भगवान अर्जुन से कहते हैं कि कर्म योग छोड़ो, ज्ञान-योग छोड़ो, भक्ति योग भी छोड़ो, सब तरह की साधनाएं छोड़ दो, कर्म-धर्म सब छोड़ दो, केवल अपने आप को मेरे समर्पण कर दो । समर्पण बड़ा मुश्किल है । जो दीन होते हैं, संत होते हैं, भक्त होते हैं, उनका ह्रदय बड़ा कोमल होता है और वे प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु ! अपने चरणों में हमें ले लो । हम तो निर्बल है । यही दीनता है । इंसान के पास सब कुछ होते हुए भी यदि वह निर्बल रहता है यानि अपने किसी भी प्रकार के बल पर भरोसा नहीं करता सिवाय एक ईश्वर के, वही सबसे बलवान है । जो इस तरह निर्बल होकर भगवान के चरणों में गिरते हैं, गिड़गिड़ाते हैं और प्रार्थना करते हैं भगवान उन्हीं की प्रार्थना सुनते हैं, यही उनका विरद् है । यह सरल साधन हैं । यदि हम अपने चित्त को निर्मल करना चाहते हैं तो मानसिक तौर पर भगवान के चरणों में बैठकर रोयें । उसको पुकारे की हे भगवान ! हमें अपना दामन पकड़ा

दीजिये, हम इस भवसागर में डूब रहे हैं । गजराज ने क्या किया ? क्या उसके पास मनुष्य जैसे बुद्धि थी ? एक पशु के पास भगवान क्यों पहुंचते हैं ? उसमें सरलता थी, कोमलता थी, दीन हृदय से प्रार्थना निकली, भगवान दौड़े आये और उसकी जान बचाई । ऐसा एक उदाहरण नहीं, लाखों हैं । जब एक द्रौपदी ने अपने बल पर विश्वास किया भगवान तमाशा देखते रहे । रुक्मिणी जी कहती रही भगवान ! एक अबला पुकार रही है आपको, अब आप कब जाएंगे उसकी सहायता करने ? तो भगवान कहते हैं कि मैं क्या करू, उसे अपने बल पर ज्यादा विश्वास है । उसने अपनी साडी दांतों में दबा राखी है । जब द्रौपदी ने देख लिया कि उसका कोई बल काम नहीं कर रहा है, अपनी लाज बचाने के उसके सब प्रयत्न विफल हो रहे हैं तब छोड़ दिया । भगवान से मन हीं मन प्रार्थना की कि प्रभु आपने मुझे आश्वासन दिया था कि जब भी मैं किसी मुश्किल में होऊँगी और आपको याद करूँगी तो आप दौड़े चले आएंगे । उसनें दांतों से साड़ी को छोड़ दिया । नग्न होने के लिए --निर्बल हो गयी-- लो उतार लो जो कुछ तुम्हारी मर्जी है, अब भगवान हीं बचाएंगे । जब इस तरह की संपूर्णतया भगवान के आश्रित हो गयी , तत्काल भगवान ने आकर उसकी रक्षा की । यह तो उनका विरद है परन्तु सब कोई तो द्रौपदी की तरह सरल और दीन भक्त नहीं हो सकते । अतः सामान्य व्यक्ति को क्या करना चाहिए, उसको कौन से जीवन की कला अपनानी चाहिए ?

यह तो हमने मान लिया कि हमारे मानसिक बीमारियों का कारण हमारा मन यानी उसका कर्तापन है । उसके कैसे मुक्त हो ? सब महापुरुषों की एक ही राय है कि अज्ञान से मुक्त हो । भगवान राम को जब वैराग हुआ था तब उनकी छोटी उम्र थी । सब प्रकार के सुख थे, युवराज थे । जैसे भगवान बुद्ध को वैराग्य हुआ था वैसे ही भगवान राम को भी हुआ था । उस समय महर्षि वशिष्ठ की सेवा में गए । इस वैराग्य को दूर करने के लिए जैसे गीता लिखी गई वैसे हीं वशिष्ट योग लिखा गया है । वशिष्ठ जी ने उपदेश भगवान राम को दिया उसमें जो बातें मुख्य हैं उन्हें मैं आपकी सेवा में अर्ज करता हूँ । महर्षि वशिष्ठ ने अपने उपदेश में चार बातें मुख्य बतलाई । (१) सत्य (२) संतोष (३) विचार और (४) शांति । जितने भी उपदेश दिए गए चाहे वे वशिष्ठ योग में हो, चाहे गीता में, चाहे महात्मा बुद्ध की वाणी में, उन्हें केवल पढ़ना ही नहीं चाहिए, उन पर मनन करके उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश करनी चाहिए ।

(१) सत्-- ईश्वर 'सत्' स्वरूप है। मनुष्य के भीतर में जो आत्मा बैठी हुई है वह भी 'सत' स्वरूप है। उसको पहचानों और अपने आपको जानो। यह मत समझो कि तुम शरीर हो। आत्मा के ऊपर चार अन्य आवरण है, वह तुम नहीं हो। तुम तो सत्स्वरूप हो। तुम्हारा जीवन सत्यता का होना चाहिए। जो आत्मा के गुण हैं, परमात्मा के गुण हैं, वे हमारे व्यवहार में होने चाहिए। साधन तो यही है कि हम आत्मा है, इस आत्मा को पहचान कर संसार में रहें और अपना नित्य का व्यवहार करें। आत्मस्थित होकर जा जो कार्य हमारे द्वारा होगा उसका प्रभाव हमारे चित् पर नहीं पड़ेगा। जब उसका अक्स हमारे चित् पर नहीं पड़ेगा, उसकी छाया हमारे चित्त पर नहीं पड़ेगी तो हमारा चित् निर्मल रहेगा और कर्मफल नहीं बनेगा। फिर जन्म मरण कैसा ? तो पहला उपदेश जो महर्षि वशिष्ठ ने राम को दिया वह था 'सत' का यानि हमारा व्यवहार सत्यता का हो। दो और दो को चार ही कहें, उस में चाणक्य-मन की की राजनीती न हो, स्पष्टता हो। राजनीति में झूठ बोलना पड़ता है परन्तु परमार्थ के रास्ते में महाराज हरीश चंद्र अपना सब कुछ बलिदान कर देते हैं पर झूठ नहीं बोलते। सामान्य व्यक्ति में और जिनका जीवन आदर्शमय है उनमें फर्क है। जिन्हें चाणक्य नीति पर चलना है वे बेशक झूठ बोले परन्तु जिन्हें राजा हरिश्चंद्र के मार्ग पर चलना है 'सत' पर चलना हैं, उनको झूठ नहीं बोलना होगा। उन्हें निरंतर सत्य ही बोलना होगा, चाहे कितनी ही हानि हो जाये। जब तक हमारा ऐसा स्वभाव नहीं बन जाता तब तक हम अपने रास्ते पर सफल नहीं होंगे।

(२) **संतोष--** संतोष वही कर सकता है जिसके भीतर में सहनशीलता और ज्ञान है। ज्ञान का मतलब यह है कि धारणा बन जाए जो आत्मा हमारे अंदर है वहीं अन्य वर्षों में हो और वही सारे संसार के जीवन-जंतु, स्थावर जंगम, सब में है। तब यदि कोई हमसे दुर्व्यवहार करता है, हमें उत्तेजना देता है तो वह कौन करता है ? वह तो प्रभु की लीला है ऐसा हमें समझना चाहिए। जब हमारा ज्ञान दृढ हो जाता है तो सहनशीलता स्वत: ही आ जाती है। सहनशीलता आते ही संतोष अप्रयास ही आने लगता है। शुरू में संतोष का मतलब यह लिया जाता है कि जो कुछ भगवान ने दिया है उसमें संतुष्ट रहें परन्तु संतोष का विस्तार करना चाहिए। कैसी भी परिस्थिति आ जाए, उसमें हमारा मन विचलित न हो।

(३) **विचार और** (४) **शांति--** तीसरा उपदेश जो दिया वह विचार का है–आत्म-विचार। यह पहचानों कि किसको वैराग हो रहा है, कौन वैराग कर रहा है ? उत्तर होगा कि मेरे मन में वैराग्य हो रहा है। परन्तु तुम तो मन नहीं हो। मन से मुक्त होकर ज्ञान को अपनाओ।

तुम तो आत्मा हो। ज्ञान और अज्ञान, वैराग और अनुराग, दोनों से मुक्त होओ। जब यह स्थिति आ जाती है तो उसका परिणाम क्या होता है ? परम शांति, तृप्ति, आत्म शांति। एक शांति अस्थायी होती है कि जैसे बड़ा अच्छा भोजन खाया, मन में बडा सुख अनुभव किया, परन्तु वह कितने समय तक रहेगा। दो चार मिनट के लिए, ऐसी वस्तु शांति नहीं है। शांति वह है जिसके साथ पूर्ण तृप्ति हो। कोई इच्छा न हो, कोई आशा न हो। जिस परिस्थिति में रहें शांत हैं-- यह आत्मा का स्वरूप है । मन की शांति अस्थायी है, क्षणभंगुर है, आत्मा की शांति तो निरंतर रहती है, गंगा के प्रवाह की तरह।

यह चार बातें महर्षि वशिष्ठ ने भगवान राम को बताई तब भगवान अपने असली (आत्मा के) शरीर को पहचान कर अपनी लीलाओं में प्रवृत्त हुए। इसी तरह जो परमार्थ के रास्ते पर चलने वाला साधक है, उसको भी कुछ साधना ज्ञान की करनी पड़ेगी। जो भी कर्म हम करें उसमें हमारा ममत्व न हो। गीता पढ तो लेते हैं परन्तु उसका उपदेश व्यवहार में नहीं लाते। अर्जुन को सिखाया ही क्या था ? यही सिखाया था कि जो कुछ भी कर्म तू करें उसके साथ तेरा कोई बंधन न हो। यदि बंधन हुआ, अज्ञान अहंकार हुआ , तो कर्म फल मिलेगा। उन कर्मों की छाया चित् पर पड़ेगी , जिसके परिणामस्वरूप जन्म-मरण के चक्कर में पड़ोगे। अर्जुन चाहता है कि कर्म बंधन से मुक्त हो जाए ,स्वतंत्र हो जाए, जितनी इंद्रियां है, मन है वह बुद्धि के अधीन हो जाए और बुद्धि आत्मा से प्रकाश ले। चित्त में एक संतुलन हो, ध्वनि हो संगीत हो। तो ऐसी परिस्थिति में जो भी कर्म किया जाएगा वह इस ज्ञान के साथ किया जाएगा कि मैं तो कर्ता नहीं हूँ, मैं तो निर्लेप आत्मा हूँ। ईश्वर ही करता है। ऐसा दृढ विचार जब बन जाएगा तो कर्मों की छाया चित् पर नहीं पड़ेगी। ऐसी अवस्था के प्राप्त होने पर हम स्वतंत्र हो जाएंगे।

एक उदाहरण दिया जाता है, कमल पुष्प का। वह जल में रहता है। जल में तरंगें उठती हैं, जल उस पुष्प पर पड़ता है परन्तु उस पर ठहरता नहीं। इसी प्रकार संसार में रहते हुए हमें उत्तेजना, प्रकोप,शत्रुता, आक्रमण आदि सब का सामना करना पड़ेगा, दुःख तकलीफें आएंगी परन्तु जीवन की कला यह है कि हम कमल पुष्प की तरह रहें। सदा खिले हुए आनंदित रहे। चित् पर किसी प्रकार की छाया अंकित न हो। जितनी भी हम साधना करते हैं चाहे वह ब्रह्मरन्ध्र पर करें, आज्ञा चक्र पर करें, हृदय चक्र पर करें, या नाभी पर करें यह

एक टेकनिक (तकनीक) है मन को शांत करने की। इससे आप मन को एकाग्र कर लेंगे, मन के भीतर शांति भी हो जाएगी परंतु यह जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है।

हम लोग साधना पर जोर देते हैं आँखें बंद करके आंतरिक साधना पर ज्यादा जोर देते हैं क्योंकि साधना जरूर करनी चाहिए, इसका अपना परिणाम है। परन्तु जब तक हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं होता, ईश्वरमय नहीं होता तब तक समझ लीजिये कि यह टेक्निक (तकनीक) है जैसे शिकारी की टेक्निक होती है। जब वह शिकार करता है तब उसकी एकाग्रता इतनी तीव्र होती हैं कि महीनों की कोशिश के बाद भी साधकों में इतनी नहीं होती। शिकार की उस एकाग्रता का यदि कोई फल है तो यही है कि वह मछली पकड़ लेगा , इससे अधिक और कुछ नहीं। उसके अन्तर में जो हिंसा की मलीनता है वह और भी मजबूत होती जाएगी। तो हमें भी देखना है कि अभ्यास करते-करते ही एकाग्रता होने लगी, मन ठहरने लगा परन्तु उसके नाम लेने और स्वरूप का ध्यान करने से हमारा चित्त भी शुद्ध हुआ या नहीं। क्या हम कबीर साहब की तरह अंतिम समय में भगवान से निवेदन कर सकते हैं कि यह प्रभु ! जैसी श्वेत चादर आपने हमें प्रदान की थी वह जैसी की तैसी श्वेत चादर आपके चरणों में अर्पण करते हैं। श्वेत चादर का मतलब यह है कि हमारा मन पूर्ण निर्मल हो जैसे कि शिशु का निर्मल होता है। क्या मरने के वक्त हमारा चित्त निर्मल होगा ? मरना तो छोड़िए क्या इस वक्त भी हमारा चित्त निर्मल है, विचार शून्य है ? तो हमारी साधना का परिणाम यह होना चाहिए कि हमारे चित्त पूर्ण निर्मल हो जाए। मीरा जी कहती कि हे प्रभु कृपा करो, मेरी चुंदरी अपने प्रेम में ऐसी रंग दो कि उसका एक भी कोना खाली न रहे , उसमें कोई दाग न रहे। हमें भी प्रतिक्षण चित्त निर्बल करने का अभ्यास करना है कि जिससे हमारे चित्त पर एक भी दाग न रहे। कर्म तो हमें करने ही है परंतु कर्म करने की यह कला होनी चाहिए कि उसके साथ हमारा बंधन न हो।

अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए। भीतर में घुसना चाहिए कि कौन-कौन सी त्रुटियाँ हम में है। यदि साधना करते-करते हमारे चित्त की शुद्धता नहीं होती, वह निर्मल नहीं होता तो समझिये कि साधना में बड़ी कमी है। तो संसार में कर्म के मामले में हमें कमल के फूल की तरह रहना चाहिए। तीन प्रकार के कर्म होते हैं। साकार या सकाम कर्म यानी आप उन कर्मों के फल की स्वयं इच्छा रखते हैं। निष्काम कर्म में फलाफल की कोई भावना नहीं रखते। इनसे कोई हानि का भय नहीं है। तीसरे कर्म वे हैं जो स्वतः होते रहते हैं, जो

ईश्वर आपसे अनायस ही करवाता रहता है। जैसे संत लोग अंदर से ईश्वर में लीन रहते हैं। और शरीर स्वतः काम करता रहता है। चूंकि हमारा चित्त दूषित रहता है इसलिए इन बातों को हम समझ नहीं पाते। भगवान राम कृष्ण पुस्तकों में लिखा है कि वे मां काली के पास बैठ कर उनसे बातें करते थे, प्रश्नोत्तर होते रहते थे। अपने भीतर की जितनी भी भावनाएं होती थी, मां के चरणों में रख देते थे। उनके प्रिय शिष्य नरेंद्र (बाद में स्वामी विवेकानंद) जब शुरू-शुरू में उनकी सेवा में आए तो उनके घर की आर्थिक स्थिति बडी खराब थी। नौकरी दिलवा दें, इस इच्छा से बाबा के पास आये थे। बाबा ने कहा मैं तो नौकरी नहीं दिलवा सकता, मां काली से जा जाकर मांग। नरेन्द्र तीन बार काली मंदिर में जाकर माँ से प्रार्थना करते हैं। बड़ा दृढ संकल्प लेकर जाते हैं कि मां सर्वशक्तिमान है , मां से नौकरी की याचना करूँगा। परन्तु माँ के सामने जाकर हर बार नौकरी के बाद भूल जाते थे - कहते हैं , "माँ, प्रेम दो"। लगातार तीन बार ऐसा हुआ। अंत में उन्हें समझ आ गई कि बाबा ही ऐसा कुछ कर देते हैं कि मेरी मति बदल जाती है। इश्वर की इच्छा यही है कि बाबा के चरणों में रहकर उनकी सेवा कर सकूं। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी कोई इच्छा न रखें ,अपने आपको मृतक सरीखा बना दे। इस वक्त जितने भी लोग आते हैं सब अपनी ही भाषा बोलते हैं (दुनिया के पदार्थ मांगते हैं) अपनापन छोड़ दो। दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु बनाएं। एक कन्या, धान कूट रही थी जिसके हाथ की चूड़ियां बजती थी उसने एक को छोड़कर सब उतार दी। एक चील मांस लिए उडी जा रही थी , कौवे पीछे लगे थे।

उसने मांस को छोड़ दिया, कौओं ने उसका पीछा करना छोड़ दिया। प्रकृति की सब चीजों में कोई न कोई गुण होता है। दत्तात्रेय ने सब में से गुण अपना लिए, इसलिए उन्होंने कहा है कि उन्होंने चौबीस गुरु धारण कीये। गुरु तो केवल ईश्वर होता है पर उन्होंने जिनसे सीख ली वे २४ थे , जिनका सहयोग उन्होंने ईश्वर के दर्शन के लिए प्राप्त किया। तो हमेशा इंसान को student (विद्यार्थी) की सी सीखने की प्रवृत्ति रखनी चाहिए। संसार का ज्ञान इतना असीम है कि कोई नहीं कह सकता कि मैंने सब कुछ सीख लिया। सर आइजक न्यूटन इतना बड़ा विद्वान और वैज्ञानिक था। उसने लिखा है कि मैं ज्ञान रूपी सागर तट पर बैठा हूँ और कंकडों से खेल रहा हूँ। यह विनम्रता है -दीनता है। हम कितने ही पढ़ जाए, कितने ही आत्म प्रगत हो जाये, परन्तु दीन बने रहना चाहिए। "प्रभु ! तेरे ज्ञान भंडार के आगे, हिमालय पर्वत के आगे एक चींटी की क्या बिसात ?" इसी तरह कोई संत बन जाए, कितनी भी उच्च कोटि ऋषि बन जाए, परमात्मा के भंडार के आगे उसकी स्थिति क्या है ? इसलिए

अपने आप को दीन बनाए रखते है। वो भीतर से प्रकाश रूप है, आनंद स्वरूप हैं, जीवन स्वरूप है, परन्तु ईश्वर के चरणों में, अपने इष्टदेव के चरणों में हमेशा हमेशा अपने आप को छोटा, नन्हा तृण समझते हैं। गुरुनानक देव कहते हैं कि मेरे कर्म नीच समान है। तुम्हारा विरद है कि मेरी रक्षा करो, मैं आपके चरणों के शरणागत हुआ हूँ, मेरी रक्षा करो। “कहूँ नानक में नीच करम्मा , शरण पड़े राखो शरमा ”। किसी सच्चे संत को आपने यह कहते नहीं सुना होगा कि “मैं गुरु हूँ, मुझे भजो , मेरी पूजा करो ”। वे हमेशा दीन बने रहते हैं। छोटा बच्चा होता है, तो कोई भीउसे गोद में उठा ले, उसे वह मुस्कुराहट देता है। छोटे बालक की सी ऐसी सरलता कब आती है जब हम राग द्वेष से रहित हो जाए, यानी कथित शत्रु भी हमें अपना मित्र ही समझें।

तो जीते जी मरना सीखें। कबीर साहब कहते हैं कि “मरने ही से पाइए पूर्ण परमानंद” मरने से ही परमानंद की प्राप्ति होती है, प्रभु के दर्शन होते हैं। कहने का मतलब यह है कि भीतर में तनिक भी अहंकार न रहे - मेरापन न रहे। ‘ तू हीं तू ’ की रट रहे और इसी रट में उस परमोच्च स्थिति में पहुंच जाए जहां कि वर्णन करने के लिए शब्द नहीं होते। वह स्थिति हमारे रोम रोम में बस जाए। “ तन में राम, मन में राम, रोम रोम में रामहि राम ” वो राम हमारे जीवन में प्रकट हो, विकसित हो, प्रकाशित हो तब समझेंगे कुछ साधना में प्राप्ति हुई है। हमेशा स्व निरीक्षण करते रहना चाहिए। जो भी त्रुटियां आप देखें उनसे निवृत होना चाहिए, उन्हें दूर करना चाहिए। यदि आपसे स्वयं ऐसा नहीं हो पाता तो जिससे दीक्षा ली है, जिसको गुरू बनाया है, उसके चरणों में जाकर प्रार्थना करनी चाहिए। उनसे सहायता के लिए निवेदन करना चाहिए। अपने आपको भीतर से साफ करते चले जाए - निर्मल-निर्मल से भी निर्मल।

(राम संदेश, अगस्त १९८१)

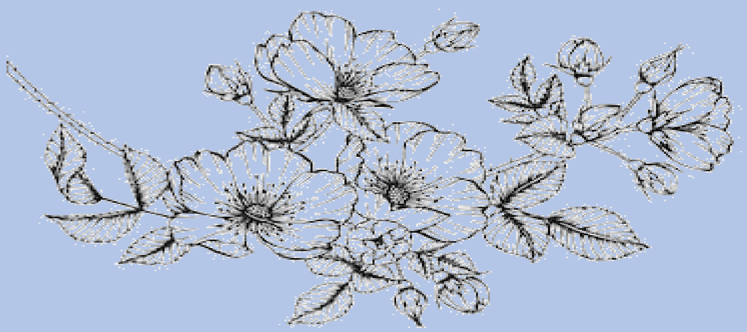

(२)

संसार का मोह दु:ख का कारण है ।

गोरखपुर, दि० १६ दिसंबर १९७९)

जिस किसी के बात करिये सब यही कहते हैं कि मेरे पास यह नहीं है, वह नहीं है, इस वस्तु का अभाव है ; यह हो जाए, वह हो जाए तो वह सुखी हो जाए । परन्तु ईश्वर की कृपा से ही यह भी हो गया, वह भी हो गया, सब कुछ होने के साथ- साथ उसकी इच्छाएं भी उसी तरह दुनी चौगुनी बढ़ गई और अंततोगत्वा इच्छित वस्तुओं का अभाव ज्यों का त्यों बना रहा इस विषय पर बहुत खोज हुई है । सनातन काल में ऋषियों और मुनियों ने इस पर खोज की है । अब वैज्ञानिक लोग इसी अभाव को दूर करने के उपाय खोज रहे है । यह ईश्वर की कृपा है कि इस समय संतजन व वैज्ञानिक धीरे धीरे एक दूसरे के निकट आते जा रहे हैं । सारे दु खों - शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, भौतिक अथवा अध्यात्मिक-- का कारण मनुष्य स्वयं है । जैसे बहती नदी से कुछ पानी अलहदा होकर किसी गड्ढे में जमा हो जाए, कुछ समय तक तो उसकी ताजगी रहती है, परन्तु बहाव के अभाव में कुछ समय बाद उस पानी में कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, वह पानी सडने लगता है तथा उसमें दुर्गंध आ जाती है । यही हालत हम आप सबकी है । हम भी परमपिता परमात्मा के चरणों से अलहदा हो गए हैं । परमात्मा ही ज्ञान का भंडार व सुखों की खान हैं । उस भंडार से विलगाव ही हमारे दु:खों का एक मात्र कारण है । जब तक हम पुनः उस भंडार में अपने आप को नहीं मिलाते तब तक हमारा दु:ख भी खत्म नहीं होगा । मनुष्य की गति बड़ी विचित्र है । वह जानता है कि दुखी हैं । पढ़ा लिखा आदमी भी जानता है कि वह दुखी है । तो भी उस दुख से निकलना नहीं चाहता । हाँ, जो मूढ़ है वह अपनी मूढता वश इस सुख दु:ख की गति से भिन्न दिखता है । दुखी आदमी से बातें करें तो वह कहता है कि यह तो जीवन का अंग बन गया है । इसको क्या छोड़ना ? वह दु:ख में ही मस्त है छात्र कहते हैं कि जिस व्यक्ति के हृदय में व्याकुलता नहीं उत्पन्न हुई यह जानने की कि “मैं कौन हूँ” संसार में क्यों आया, मुझे यहाँ क्या करना है, मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है” ऐसे प्रश्न जिस व्यक्ति के भीतर नहीं उत्पन्न होते,वह व्यक्ति पशु के सामान्य है । वह मनुष्य योनी में चैतन्य होते हुए भी जड़ अवस्था में हैं । हम सब जानते हैं कि हमारी

इतनी बुरी अवस्था हो गई है तो भी हमारे अंदर व्याकुलता नहीं है । जानते हैं कि 'मैं भी उस परमपिता का अंश हूँ , उसकी संतान हूँ, उस का अंग हूँ फिर भी मैं दुखी हूँ ।' इस दुःख से निवृत होने के लिए हमारे पास शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है । हम दुःख रूपी निदा से जागना नहीं चाहते, दुखी ही रहना चाहते हैं और मजे से सोते हैं । वह इस संसार से ऐसे ही चला जाएगा, अपरंच, यह संसार ऐसे ही चलता रहेगा । कोई व्यक्ति आता है और कहता है–" उठो जागो, यह संसार दुःख स्वरूप है, इस से निकले तो तुम सुख पाओगे" । परन्तु वह कब इसकी सुनने लगा । उल्टे कहता है- यह ऐसे ही कहता है, बावला है, इसे संसार का क्या पता ? ।

एक बार विष्णु भगवान ने नारद से कहा , संसार में जाइए, देखिये यहाँ पर लोग खाली हो रहा है, लोगों का उद्धार कर यहां ले आइये । नारद जी धरती पर आये । देखा, एक व्यक्ति बोझ उठाए हुए हैं कहता है- धूप इतनी तेज है, बड़ी गर्मी लग रही है , पसीने से तबियत परेशान हैं, सर पर भारी बोझ है, जीवन कष्टपूर्ण हो रहा है, इससे तो मर ही जाना अच्छा है । नारद जी मन में खुश हुए कि एक व्यक्ति ऐसा मिला जो इस संसार से दुखी और परलोक जाना चाहता है । वह उसके पास गए और भगवान का आदेश सुनाया । परलोक का नाम सुनते ही वह व्यक्ति घबरा उठा और बोला, "ना बाबा ! मैं अभी नहीं जाऊंगा, अभी तो बच्चे छोटे छोटे हैं, नादान हैं , मैं अगर चला गया तो सारा परिवार अस्त-व्यस्त हो जाएगा । अत: अभी नहीं जा सकता । बच्चे बड़े हो जाएँ , घर का काम, खेती आदि संभाललें , तब बैकुंठ चलूंगा ।"

कुछ समय बाद नारद जी फिर आये । देखा कि वही व्यक्ति मरने के बाद बैल बना हुआ है । नारद जी ने उसे उसके पिछले जन्म की याद दिलाते हुए कहा कि अब तो चलो । परन्तु उसने फिर कहा, " अभी सारे खेत खाली पड़े हैं, अगर जोते बोये नहीं गए, तो मेरे लड़के जो खेती का अनुभव नहीं जानते, खाने के बिना मर जायेंगे । आप कुछ समय और दीजिये फिर आपके साथ चलूंगा ।" इस तरह उसने इस बार फिर नारद जी को मना कर दिया । फिर कुछ काल बाद नारद जी आये । देखा कि वह बैल भी मर चूका है । कुत्ता बन कर उसी दरवाजे पर बैठा हुआ है । नारद जी ने पुनः उसे परलोक की बात समझाते हुए जब कहा कि तुम्हें शर्म आनी चाहिए, तो झट उसने जवाब दिया, "जानते नहीं कि आजकल कितने चोर डाकू बढ़ गए हैं जो मौका मिलते ही घर लूट ले जाएंगे । रखवाली नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा ? ये बच्चे तो सोते ही रहते हैं ।

फिर जब कुछ समय पश्चात जब नारद जी आये तो उन्होंने देखा कि वही जीव नाली में कीड़ा बना पड़ा है । नारद जी संत स्वभाव वश जब उसे फिर चेताते हैं तो वह कहता है, " एक बात पूछूं भगवन ! क्या आपको कोई और नहीं मिला जिसे आप बैकुंठ ले जावें ? आप मेरे हीं पीछे इस तरह क्यों पड़े हुए हैं ? मैं गंदगी में पड़ा हूँ तो आपका पेट क्यूँ दर्द क्र रहा है । मुझे यही अच्छा लगता है । आप कृपा कर मेरा पीछा छोड़िये । मुझे आपका परलोक नहीं चाहिए ।"

यह उस विशेष जीव की ही हालत नहीं अपितु हम सब की यही हालत है । हम सब मोह निन्द्रा में सोए हुए है । नारद रूपी गुरु हमको जगाना चाहता है और कहता है कि यह मनुष्य चोला बड़े भाग्य से मिला है । दुनिया तथा दुनिया की सारी चीजें नाश को प्राप्त हो जाएंगी । जन्म मरण का जो चक्कर है , वह सबसे बड़ा दुःख है । 'दर्शन' केवल यह नहीं है कि भगवान की किसी मूर्ति का दर्शन कर ले । मूर्तियों के दर्शन को महापुरुषों ने व शास्त्रों नें दर्शन नहीं माना है बल्कि उनका 'दर्शन' यह है कि मेरे और मेरे प्रियतम परमात्मा में कोई फर्क न रहे । 'दर्शन' का मतलब है कि भगवान के चरणों में जाए तो उसकी चरण रज बन जाए उसी का रूप बन जाएँ । उसी अवस्था में आने पर भीतर में आवाज आती है- 'तन में राम, मन में राम, दृष्टि में राम, रोम रोम में राम,जल में राम, थल में राम, वायु में राम, राम कहाँ नहीं है यह केवल दार्शनिकता नहीं , अपरंच उसकी अनुभूति होनी चाहिए । इसी में हम जीयें , इसी में मरें, इसी में जीवन प्राप्त करें । सुख दुःख का कारण हमारे मन में है । कीटाणु की तरह गंदगी में पड़े हैं और यदि नारद जैसे संत भी हमारा मार्गदर्शन करें तो भी कुछ नहीं हो सकता । पहले तो हमें स्वयं जागना चाहिए ।

गांधी जी पढ़ा करते थे–' उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है ' -- उन्हें इसमें बड़ा रस आता था । वे संपूर्ण भारत को जगाना चाहते थे । और भी बड़े अच्छे अच्छे भजन थे लेकिन उनको इस कड़ी में अत्यंत रस मिलता था । उन्होंने सच्चे हृदय से, लगन से जीवन के अंतिम सांस तक, देश की सेवा की । मगर यह मुसाफिर सुनता कहाँ है । सोया हुआ जो है । दुःख की बात है कि मृत्यु सामने खड़ी है, दांत टूट गए हैं, आंखों की ज्योति कम पड़ गयी, चिंतन शक्ति कमजोर हो गई है ,शरीर बुरी तरह से थक गया है, यह शरीर किसी भी वक्त टूट सकता है , पता नहीं कब जीवन लीला समाप्त हो जाए, फिर भी मोह माया में अटके हुए हैं । सोचते हैं दो साल में रिटायर हो जाएंगे , पेंशन मिलेगी, आराम से गुजर

बसर कर लेंगे । परंतु रिटायर भी हो गए, पेंशन भी मिलने लगी, जब पूरी तनख्वाह पाते तब तो दिक्कत से काम चलता रहा अब जबकि पेंशन की रकम मात्र तिहाई या आधी ही रह गई, तब कैसे काम चले ? गुजारा नहीं होता तो कोई और धंधा करने लगते हैं । बच्चे जो कि छोटे छोटे थे, वे क्रमशः बढ़ने लगे । कोई बच्चा पढ़ता नहीं तो किसी को नौकरी नहीं मिलती । इसी उधेड़-बुन में खूब दौड धूप कर रहे हैं । नाना प्रकार के जंजालों में जीवन दुभर हुआ जा रहा है यह हर दुनियादार के साथ लगा हुआ है । परन्तु जिन्होंने अपने को संत सदगुरू के चरणों में अर्पण कर दिया है, वे सुख के साथ सोते हैं, उन्हें कोई चिंता नहीं । उनकी चिंता करने वाला तो कोई और है ।

अत: पहला साधन 'जागना' है । हम कुम्भकरण की भांति सोये हुए है । कहा जाता है कुंभकरण छह महीने सोता था, पर हम तो जीवन भर सोते हैं । लेखकों के कहने का एक ढंग है । हम तो कुंभकरण से भी गए गुजरे हैं । ज्यादा सोने वाला व्यक्ति तामसिक होता है । कुछ लोग खूब पेट भर कर भोजन करते हैं, पेट खराब हो जाता है । बीमारी हो जाती है, नींद नहीं आती । जीवन बड़ा कठिन हो जाता है कुछ लोगों की आदत बहुत बोलने की पड़ जाती है । ये सारे व्यसन तामसिक वृत्ति के ही दुष्परिणाम हैं । ऐसे लोग कहीं भी हो, चुप और शांत नहीं बैठ सकते । ऐसा करना मुनासिब नहीं । वाक्- इंद्री पर नियंत्रण रखना लाजिमी है । कम बोलना चाहिए, आवश्यक होने पर अवश्य बोलें, वर्ना चुप रहे । अधिक बोलने पर बातों का वजन घटता है और बहुधा लोग मानते भी नहीं । अपितु, वाणी संयम से वाणी की ओज बढ़ता है तथा लोग उसे भी मान भी लेते हैं । कुछेक लोगों की ऐसी आदत सी बन जाती है की भी वे भीतर में बोलते रहते हैं ऊपर- ऊपर भले ही मौन रहें । यह परिपक्व मन के विपरीत बात है । अभ्यास करते रहे कि विचार तभी उठे जब चाहें अन्यथा शांत रहें । हर साधक का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन के लक्ष्य प्रति जागे और उस लक्ष्य प्राप्ति में जो जो साधन अनुकरणीय हों उन्हें पूरा करने में पूरी निष्ठा के साथ तन मन व वचन से जुट जाएँ । वास्तव मे वह व्यक्ति भाग्यवान है जिसके हृदय में यह बात उत्पन्न होती है कि मैं कौन हूँ, मुझे क्या करना है ,मेरा लक्ष्य क्या है', आदि आदि । और उस लक्ष्य प्राप्ति में सम्पूर्ण रूप से जुट जाता है ।

घर में माँ बाप जैसा आचरण करते हैं बच्चे उसकी नकल करते है । जिस घर में माँ बाप पूजा सत्संग आदि करते हैं उसका संस्कार उनके बच्चों को पड़ता है । ऐसे बच्चे चुकी

शुभ संस्कार लेकर आये होते हैं अत: थोड़े से प्रयास करने पर भी बहुत आगे निकल जाते हैं । धीरे- धीरे उनके मन में ईश्वर दर्शन की लालसा स्वाभाविक तौर पर उत्पन्न होती है जैसे जैसे उनकी व्याकुलता बढ़ती है , उनका काम आसान होता जाता है । अत: सब के लिए आवश्यक है कि त्याग करें । त्याग भी किसका ? अपनी आकांक्षाओं का, अपनी वासनाओं का, अपनी मान बड़ाई व नामवरी का, यह सबसे मुश्किल काम है । इस संसार में सबसे कठिन है ‘त्याग’ । जरा इसकी गहराई में जाएं । और कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम अपने विचारों को तो कम करें और चिंतन का अभ्यास करते करते शून्य हो जाए । अगर कोई व्याकुलता हो भी तो एक मात्र भगवान के दर्शन की ।

वह मानव स्वभाव है कि हर बात को जानने की उत्सुकता मन में होती है, विचार उठते हैं, जब तक मन है विचार उठते हीं रहेंगे । साधक को उचित हैं कि वह अपने को इन विचारों के पीछे ले जाएं । शव की क्या अवस्था होती है ? चैतन्यता (आत्मा) के अभाव में शरीर जड़ बन गया । सारे क्रिया कलाप ठप पड़ गए । वही अवस्था साधक को जीते जी अपने अंदर पैदा करनी है । जैसे बच्चे हर बात की नकल उतारते हैं तथा उसके उसके कार्य में कोई अवरोध नहीं करता, उस नकल के अलावा उस दौरान उसके मन में अन्य विचार या संकल्प विकल्प नहीं उठते । उनका ध्येय सहज ही उनके सम्मुख होता है । साधकों को इस बालकवत स्वभाव का अनुकरण करना चाहिए । ईश्वर कृपा के अनुभव में जब भी विचार उठे उन्हें बंद करिये । सांस जो चल रही है उसकी अनुभूति करिये तथा अंदर में प्रकाश का पुंज जो दिखे उसी में अपने को लय कर दीजिये । “मैं” का अहंकार जब तक पूर्ण रूप से नहीं निकलेगा तब तक इष्ट की सच्ची अनुभूति संभव नहीं । कहा है–“ जब लग मैं था हरी नहीं, अब हरी है मैं नहीं ।" और सब छोड़ कर अहम (खुदी) को नि:शेष करने की साधना हो तथा जो भी भाव, विचार अथवा परिस्थिति उत्पन्न हो सब को उसके चरणों में न्योछावर कर दें । मुसलमान लोग बकरा-ईद के दिन बकरे या पशु की बलि देते हैं, हम भी देवी के मंदिर में नारियल चढ़ाते हैं । क्यों ? बली क्या है ? अपनी सबसे प्यारी चीज का बलिदान करना अपने इष्ट के चरणों में सदा सदा के लिए अर्पण कर देना और मोह व ममता की डोर को सदा के लिए तोड़ देना, यहां तक कि उसकी याद भी बाकी न रह जाए, यही बलि कहलाती है । अत: बलि की बात करने में सूझबूझ से काम लेना चाहिए । ईश्वर को प्रसन्नता तभी मिलेगी जब हम अपने अहंकार को, यानी यह विचार कि हम ईश्वर से अलहदा है अथवा वह हम से भिन्न है, खत्म कर दें ।

इस अलहदी के भाव को समाप्त कर उससे मिल कर एक हो रहने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाएं अनादि काल से की जाती रही है । उनके संकेत गीता, उपनिषद, वैदिक शास्त्रों में मिलते हैं । भगवान शंकर ने पार्वती जी को एक सौ चौबीस प्रकार की योग बतायें हैं ? पातंजलि भगवान ने अष्टांग योग की बात कही है । इस तरह वेदांत और षटशास्त्रों में भी भिन्न भिन्न प्रकार की साधनाएं वर्णित है । शुरू- शुरू में ये सारी साधनाएं मूलतः ज्ञान पर ही आधारित यही । जब ज्ञान का बाल कम होने लगा व मानसिक स्तर भी नीचे उतरने लगा, हमारे ऋषियों ने कृपा कर भक्ति का प्रचार शुरू किया और इसके भी नौ प्रकार और हिस्से बनाए जो नवधा-भक्ति के नाम से जाने जाते हैं । प्रारंभ में वेदांत का खूब प्रचार था । महात्मा बुद्ध ने भी इसी का अधिक प्रचार किया तथा गीता को वेदांत का हीं अंग और उपनिषदों का निचोड़ बताया । गीता में जीते जी मरना सिखाती है, सिखाती है बिना मेरे अहंकार के समूल नष्ट हुए, भगवान की भक्ति नहीं बन सकती । शब्दों के पीछे नहीं जाना चाहिए बल्कि उनके सबक लेकर उनमें बताई गई साधनाओं का अनुसरण व पालन कर उन्हें आत्मसात करना चाहिए । जमाना बडा नाजुक हो गया है । बाहरी आक्रमण से हमारी भारतीय संस्कृति का विनाश प्रारम्भ हो गया । पर भगवान अपने विरद को कभी नहीं भूल सकते । यह विरद क्या है ? वह विरद है–" यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानम अधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम ।"

पंद्रहवीं शताब्दी में संत जन पधारे । इनके आने से पहले ज्ञान का प्रचार था जो स्थूल अहंकार से दबा गया था । एक से बढ़कर एक संतों का एक साथ आगमन जैसे संत नामदेव जी, संत ज्ञानेश्वर जी, श्री चैतन्य देव जी, संत कबीर, गोस्वामी तुलसीदास, धनी धर्मदास, सूरदास, मीरा बाई आदि । भारत भूमि पर भक्ति की लहर छा गई, लोगों में नए जीवन का संचार हुआ, तेजी से ह्त्रास होते हुए भारतीय संस्कृति, एक बार पुनः जी उठी । कालक्रम में भक्ति का सूर्य भी मंद पड़ने लगा और लोग भौतिक ज्ञान व विज्ञान की ओर आगे बढे । हालांकि भौतिक ज्ञान की भी सीमा है जो ऐहिक सुख को ही सब कुछ समझता व् उन्हीं की उपलब्धि को अपनी इष्ट मानता है । फिर ज्ञान में और सूक्ष्मता का प्रादुर्भाव हुआ व् सौर मंडल की अनेकानेक खोजे हुई व् होती ही जा रही है । इस ज्ञान और विज्ञान की प्रगति का एक मात्र फल बौद्धिक विकास तो हुआ परंतु यांत्रिक अनुसंधानों से आध्यात्मिकता का प्रसार रुक सा गया क्योंकि ज्यों ज्यों हमारे वृत्त बाह्य उपकरणों का अवलम्बन करती गई उतना ही हम लक्ष्य से दूर खींचते चले गए ।

परमात्मा ने हमारे अपने सारे तत्वों को हमारे अंदर भर कर हमें प्रकट कर अपने को छिपा दिया और हम वही है जो वह है–‘तत् तवम असि’ - परंतु आधुनिक अन्वेषणों के फलस्वरूप हमारा पतन हो गया । इन बाहरी वृत्तियों को अंतरमुखी बनाना होगा और फिर यह विचार दृढ करना होगा कि परमात्मा ‘एक’ है , हम उसके अभिन्न अंग है-- बल्कि वही है जो वह है । As you think so shall you be--यानि तुम जैसा सोचोगे वैसा ही बन जाओगे । ‘ब्रह्म’ कहने से ब्रह्म नहीं हो सकते बल्कि ‘ब्रह्म’ के गुणों का मनन करके, शास्त्रीय रीति से व्यवहार में उतारे तभी वास्तविक शक्ति प्राप्त हो सकती है । विज्ञान सिर्फ सहायता करता है । जैसे डॉक्टरी की किताब पढ लेने मात्र से मरीज ठीक नहीं किया जा सकता है बल्कि उन पुस्तकों में बताई गई रीति से मरीज की जांच पड़ताल सही ढंग से करने के बाद उसका नुस्खा बनाने तथा उपयुक्त दवा देने की व्यवस्था करनी होती है । इतना करने के बावजूद भी अगर मरीज उस दवा का सेवन डॉक्टर के बताए गए तरीके से नहीं करता है तो लाभ उस दवा से अपेक्षित है वह नहीं होगा । अतः विज्ञान भौतिक रहकर कुछ नहीं कर सकता । वह हमारे प्रतिक्षण के व्यवहार में दृष्टिगोचर होना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति पढ़ा लिखा है । अंधविश्वास का समय चला गया । ध्रुव प्रहलाद की भक्ति का युग चला गया । दो और दो मिलकर चार होते हैं, यह विज्ञान कहता है भर नहीं बल्कि सिद्ध करके दिखा देता है, वैसे ही साधक का यह पुनीत कर्म व धर्म है कि वह भी संत मत के उसूलों पर चलकर परमात्मा का साक्षात्कार करें और दुनिया के सामने अपने को नमूने के रूप में खड़ा करें । जैसे दवा से फायदा होने में मरीज का विश्वास उस दवा पर बढ़ जाता है, उसी तरह आपको परमात्मा- प्रेम में सराबोर देखकर हर जिज्ञासु और दुनियादार आपके सिद्धांतो में विश्वास ला सकेगा ।

राम संदेश, दिसंबर १९८१

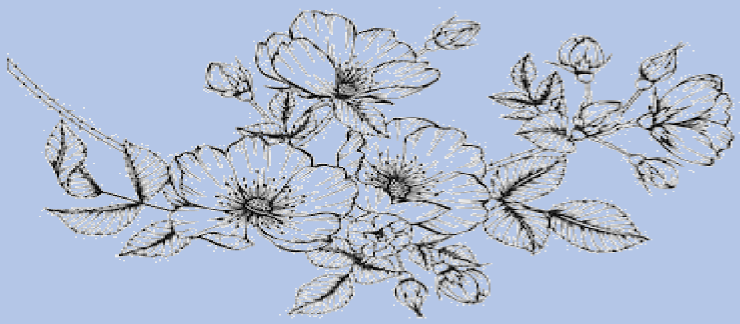

(३)

व्यवहार प्रेममय होना चाहिए

--एटा, दि० १३-३-१९८० सायं

पहले प्रसाद को परमपिता परमात्मा के चरणों में बड़ी दीनता से अर्पित करना चाहिए। प्रसाद को जब बांटा जाए, तब बांटने वाला अपने इष्ट देव में लय होकर बांटे। जो भी प्रसाद को ले, वह अपने गुरुदेव, इष्टदेव के ध्यान में लय होकर प्राप्त करें। ऐसे प्रसाद से रोगियों के रोग तक ठीक हो जाते हैं परन्तु हम लोग हंसी मजाक में लेते हैं और बांटते हैं। इसलिए आप लोगों से निवेदन है कि मेहरबानी करके आप लोग शांतिपूर्वक प्रसाद प्राप्त करें। ऐसा न करने से प्रसाद की महत्ता चली जाती है।

बालक नामदेव जी ने प्रभु के चरणों में प्रसाद चढ़ा कर प्रार्थना की है कि मेरे पिताजी से तो आप प्रसाद ले लेते थे मुझसे क्यों नहीं लेते। बच्चों की स्वभाविक सरलता से वे प्रभु से प्रसाद लेने की हट करते हैं और कहते हैं कि यदि आप ऐसे सीधे तरीके से नहीं मानते तो मै डंडा लिए आता हूँ। भगवान तो प्रेम और सरलता से के भूखे हैं। आप डंडा ले आए हैं। अनुरोध से, दीनता से, बच्चों जैसी सरलता से ही हमें प्रभु के चरणों में प्रसाद समर्पित करना है। ऐसा करने पर वास्तव में परमपिता परमात्मा और हमारे पूर्वज संत उसे स्वीकार करते हैं। जब प्रसाद लें तो सरलता से, शांति से ले सत्संग में जब तक बैठे कम से कम तब तक तो वो शांत रहे ही। ईश्वर की जो कृपा बरस रही है उसका अनुभव यहां करें, और उसी भावना से घर लौटे। थोड़ी देर के लिए ही सही, कृपा का अनुभव तो करें, बच्चे तो शोर मचाएंगे हीं, उन्हें मचाने दें। परन्तु हम बड़े तो कम से कम शांत रहें। जो इस बात को समझते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वह तो इसका ध्यान अवश्य रखें। आप सब मिल कर ईश्वर से प्रार्थना करें, गुरुदेव से प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! हे गुरुदेव ! आप हमारी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करिये।

भजन

(नामदेव जी)

दूध पियो मेरे गोविंद राय ।

दूध कटोरे गड़वे पानी , कपिल गाय नामै दुहियानी ॥

दूध पियो ....

दूध पियो मेरो मन पतियाय, नाही तो घर को बाप रिसाय ।

सुहिन कटोरी अमृत भरी, लै नामै हरी आगे धरी ॥

दूध पीयो.......................

एक भगत मेरे ह्रदय बसें, नामै देख नारायण हँसे ।

दूध पिलाई भगत घर गया, नामै हरी का दर्शन भया ॥

दूध पियो ....

पूज्य संत नामदेव जी कितनी सरलता से अपनी वाणी में प्रभु चरणों में दूध रखते हैं । प्रभु चरणों में पहुंचने का सरलता ही एक मात्र साधन है । बच्चों की तरह ही हमें सरल बनाना है । तभी प्रभु चरणों में पहुंचने की अधिकारी बन सकते है ।

प्रभु दयानिधि उनके गुणों का गान करें और मन ही मन में प्रभु के गुणों पर विचार करें उन्हें अपनाने का प्रयास करें । शरीर को ढीला छोड़ दीजिये । मन में जो विचार है तो मन से कह दीजिये कि इनका गुनावंन थोड़ी देर के लिए न करें । कोई तनाव न हो हमारे और परमात्मा के बीच में अहंकार की जो दीवार है उसे तोड़ दीजिये । अहंकार हमेशा विचारों द्वारा काम करता है । विचार ही हमारी आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार है । अकारण ही हम संकल्प विकल्प उठाते रहते हैं, समझते नहीं हैं तथा ख्यालों को अधिक मजबूत करते रहते हैं । अभ्यास करना है कि हमारे भीतर में विचार न उठे या कम से कम हीं उठे । साधना

यह करनी है कि मन हमारे अधीन हो जाए । मन परमपिता परमात्मा ने हमें बड़ा विचित्र उपकरण प्रदान किया है इसका सदुपयोग करना है । आवश्यक हो तो विचार उठा लिया नहीं तो इसको शांत रखना चाहिए । उसी प्रकार जिस प्रकार भगवान शिव का नंदी बैल उनकी सेवा में बैठा है उतनी सरलता से उस मन रूपी नंदी बैल को बैठाए रहे । जब भगवान को आवश्यकता होती है तो बैल की सवारी कर लेते हैं नहीं तो वह उनकी सेवा में शांत बैठा है । साधना यही करनी है कि प्रेम स्वरूप परमात्मा के चरणों में प्रेममय होकर यह मन स्थिर होकर बैठे । इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है । बाकी जितनी पद्धतियां संसार में प्रभु प्राप्ति के लिए हैं, बड़ी विस्तृत है । जितना हम विस्तार करते गए परमात्मा को गुढ बनाते गए साधारण व्यक्ति की समझ में नहीं आता कि वह क्या करे ? बस करना यह है कि जैसे निद्रा में आप सोते हैं उस समय आप क्या करते हैं, कुछ भी तो नहीं करते । बड़ा सरल है । शरीर शिथिल हैं । मन तनाव रहित है । आप निद्रा देवी का आनंद ले रहे हैं इसी प्रकार जागृत अवस्था में ही, सुषुप्ति अवस्था में रहना है । जागृत-सुषुप्ति को अपनाना है क्योंकि इस प्रकार जागृति-सुषुप्ति में ही प्रभु की प्राप्ति है । जब तक हमारी जागृति-सुषुप्ति अवस्था नहीं होती तब तक परमात्मा के साथ हमारी तद्रूपता नहीं होती । हमें अपने आप को तनाव मुक्त करना है । रात को देखिए यदि मन में तनाव है तो आपको नींद अच्छी नहीं आएगी । जब शरीर आप ढीला छोड़ देते हैं तो निद्रा देवी आपको घेर लेती है , आपको जागने में प्रसन्नता की अनुभूति होती है ।

इसी प्रकार प्रभु के चरणों में जाकर अपने बल का प्रयोग नहीं करते । शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक इन तीनों में से किसी बल का प्रयोग नहीं करते । केवल उसकी इच्छा पर सबको छोड़ देते हैं जैसे किसी कलाकार के हाथ में लकड़ी या पत्थर दे देते हैं और वह कोई अवरोध नहीं करता, बोलता नहीं है, तो कलाकार बहुत ही सुन्दर तस्वीर मूर्ति उसमें से निकालता है । इसी प्रकार हम अपने आप को पूर्णत: उस प्रेमास्पद के चरणों में समर्पित कर दें । आप देखेंगे कि आपके भीतर में एक अजीब तरह की शांति और आनंद की अनुभूति कुछ समय बाद होने लगी है ।

मन का काम है कि अकारण ही यह कोई न कोई समस्या खड़ी कर लेता है । जो अवकाश प्राप्त व्यक्ति है, नौकरी समाप्त हो गई है, पेंशन मिल रही है, बच्चे काम से लगे हैं

फिर भी वे चिंतित हैं। जीने का तरीका यह है जैसे कि भगवान श्री कृष्ण ने गीता में दिया है कि अनासक्ति से कार्य करें, संसार के प्रति पकड को ढीला कर दें, जो अतीत में हो चुका है उसे क्यों पकड़े ? भूल जाइए, बच्चों की चिंता मां बाप को होती है। यदि परमात्मा में विश्वास है तो कल के लिए चिंता क्यों ? यह हमारी भूल है, यह अहंकार है। नासमझी है हमारी। हमें ईश्वर का आश्रय लेना है। ईश्वर की गोद में बच्चे की तरह बैठना है। वह हमारा सच्चा पिता है। पिता के रहते हुए बच्चों को चिंता की क्या आवश्यकता ? यह जीने का तरीका है। हमें वर्तमान में ही प्रभु की कृपा को पाना है ,यही आत्मिक उन्नति का समय है। इसलिए बाकी सब को छोड़कर सभी समस्याओं को छोड़कर प्रभु चरणों का वर्तमान में ही आश्रय ले लें। यदि किसी से हमारी शत्रुता है तो उसे क्षमा कर दें। क्षमा ही परमात्मा का रूप है। यदि आप परमात्मा की पूजा करना चाहते हैं तो आपको परमात्मा के गुणों की पूजा करनी है। परमात्मा के गुणों की पूजा करने का मतलब है परमात्मा के गुणों को सराहना होगा, उसको अपनाना होगा , उन्हें अपने अपनाकर व्यवहार में विकसित करना होगा। परमात्मा का गुण है, क्षमा करना उसी प्रकार आपका स्वभाव बन जाए आपको दुनिया में कोई कितनी ही उत्तेजना दे, शत्रुता करें, आप क्षमा कर दे, सत्संगी व्यक्ति और सामान्य व्यक्ति में फिर क्या अंतर रहेगा ? यदि सत्संगी यह कहता है कि उसे ऐसा किया है वैसा किया है तो सत्संगी और सामान्य व्यक्ति में क्या अंतर है ? यदि आप सत्संगी है और सत्संगी अपने आपको समझते हैं तो आपको इन विचारों से ऊपर उठना होगा। सामान्य व्यक्ति से आपके व्यवहार में कुछ न कुछ अंतर होना चाहिए। आप कहते हैं कि वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करता है मैं क्यों न करूं ? ऐसे शब्द सत्संगी भाई के मुंह से नहीं निकलना चाहिए।

भगवान महावीर के पास एक राजा गया। कहने लगा दूसरा राजा उससे इर्ष्या करता है , परेशान करता है, उसके पास उससे धन कम है, वह मुझसे चाहता है कि मेरा धन उसे मिल जाए। भगवान महावीर कहते हैं कि इसमें क्या आपत्ति है तुम्हें ? तुम संन्यासी बन जाओ और अपना सारा धन उसे दे दो उसकी संतुष्टि हो जाएगी। ऐसा होना चाहिए एक सत्संगी का व्यवहार। सत्संगी को तो बलिदान देना ही पड़ेगा यदि वह भी वही कार्य करता है जो सामान्य व्यक्ति करता है तो सत्संग का क्या उपयोग ? वह सत्संगी कहलाने का अधिकारी नहीं। तितिक्षा अपनानी होगी।

तो निवेदन कर रहा था कि विचार ही आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार है । विचार विमुक्त होना है । **"विचार विमुक्त तब तक नहीं हो सकते , जब तक विकार विमुक्त नहीं होंगे ।"** यह सत्संगी भाइयों की एक भूल है (और रही है) कि छह छह घंटे एक आसन पर बैठकर पूजा करते हैं, अहंकार हो जाता है कि मैं तो बहुत पूजा करता हूँ । यह देखा गया है कि हम जैसे साधारण व्यक्ति को ही नहीं नारद जी को भी अहंकार हुआ है, अन्य ऋषियों को भी हुआ है और हो जाता है । यह कोई असामान्य चीज नहीं है । इससे कितना लाभ होता है यह तो वही व्यक्ति जानते हैं । वास्तविक लाभ तब जानना चाहिए कि जब हमारे भीतर में वही गुण समा जाएँ जो ईश्वर के होते हैं । ईश्वर पूजा, गुरु पूजा या इष्ट पूजा यही है । उनके गुणों को सराहे और उनके गुणों को अपनाने का प्रयास करें । गुरु दर्शन, ईश्वर दर्शन यही है, कि ईश्वर गुरु या इष्ट के जो गुण हैं वह हमारे में समा जाय । आत्मा परमात्मा में इतना ही अंतर है । जीव और परमात्मा में इतना ही अंतर है , कि परमात्मा सागर है जीव उसका अंश है । मात्रा का अंतर है । गुणों में अंतर नहीं है । इस वक्त क्या हो रहा है ? विकारों के कारण हमारे गुण छिप गए हैं । वह सूर्य अस्त हो चुका है । साधना यही करनी है कि हम सूर्य की तरह प्रकाशित हो । जो हमारा स्वभाव है उसमें वही गुण हो जो ईश्वर में हैं । उनका विकास करें । पुरातन विचारों से धीरे धीरे मुक्त हो ,शुद्ध हों , सदगुणों सद्-विचारों को अपना कर सब कार्य करें । धीरे धीरे मन को प्रभु के चरणों में लय करते चले जाएं । आगे चलकर इसी रास्ते से जब जाएंगे निर्विचार हो जाएंगे और जब चाहेंगे तब संसार के साथ व्यवहार कर लेंगे । तो कोशिश यह करनी चाहिए कि हम निर्विचार हों और निर्विकार हो । आम सत्संगी भाई कहते हैं कि २० -२१ साल हो गए, अब भी वे शिकायत करते हैं कि पूजा में मन नहीं लगता है । इसी प्रकार की एक चिट्ठी हमारे दादा गुरु पूज्य परम संत लाला जी महाराज की सेवा में पहुंची । उन्होंने इस पत्र का जो उत्तर दिया है वह हमारे सब के लिए प्रतीक है । हमें क्या करना चाहिए, इसके लिए आदेश उस पत्र ('अमृत रस' पृष्ठ ११ व १२) में हैं । आप जरा इस पत्र को गौर से पढ़िए और इस पत्र को सप्ताह में एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए ताकि हम सचेत रहे । हम संसार में सो कर काम करते हैं, यहां तक कि ईश्वर पूजा भी सो कर ही करते हैं कोई भी व्यक्ति नहीं जानता कि वास्तव में ईश्वर पूजा क्या मतलब है ? पहले तो जानना चाहिए कि ईश्वर के महत्ता क्या है ? ईश्वर है कौन ?

इसलिए पूजा से पहले प्रार्थना करते हैं, परमात्मा के गुणों को याद करते हैं । उसके गुणों को सराहते हैं । उसके लिए वायुमंडल वातावरण बना लिया । परमात्मा की नजदीकी प्राप्त कर ली, अब उसकी प्रार्थना करो , जो मांगना है, मांगो, फिर उसकी प्रसादी लेने के लिए अपने आपको उसके समर्पण कर दो । उसकी कृपा के ही गंगा में स्नान करो, डुबकी लगाओ । यदि आप अपने मन को दृढ करना चाहते हो तो थोड़ा थोड़ा अभ्यास भी करो आज्ञा चक्र पर (या जैसा भी आपको आपके गुरुजनों ने बताया हो) । प्रसाद लेने का तरीका जो ऊपर बताया है अवश्य अपनाना चाहिए । यह घर में ही गुरु के साथ सत्संग हो जाता है, ईश्वर के साथ सत्संग हो जाता है ।

इसके साथ मनन भी करना चाहिए । अपने इष्टदेव के, गुरुदेव के प्रवचन पढ़ने चाहिए, थोड़ा पढ़िये मनन अधिक करिए और देखिये कि उसके क्या भाव हैं ? **जैसे मौन रहना है** -- यह क्या चीज है ? हम क्यों मौन रहे ? इससे क्या लाभ होगा ? इससे क्या हानि हो सकती है ? इस पर आप मनन कीजिए । मनन करने से , जिस बात पर मनन करते हैं वह दृढ हो जाती है । आपके चित्त पर अंकित हो जाती है और आपका स्वभाव बन जाता है । आम तौर पर सत्संगी लोग मनन नहीं करते, करना चाहिए । सत्संग में सुन लिया और बाहर जाकर निकाल दिया । कुछ लोग वह नोट रखते हैं । उनकी कापियां भी अलमारियों पड़ी रहती है । गुरु महाराज का, पूज्य लाला जी महाराज (दादा गुरुदेव) का जो साहित्य है, वही हमारे लिए गीता है , रामायण है , कबीर साहब, गुरु नानक साहब की वाणी है । उन्हें पढ़ना चाहिए उनका मनन करना चाहिए और उनकी गहराई में जाना चाहिए । शब्दों में जो गंगा छिपी है उसके भीतर घुस कर स्नान करना चाहिए जैसे सागर की गहराई में जाकर मोती निकाल आते हैं उसी तरह अपने इष्टदेव के वचनों को गहराई में जाना चाहिए । जितना आप इष्ट देव की वाणी का मनन करेंगे उतना ही उनके नजदीक होते चलें जायेंगे ।

एक बात और कह दूँ, यह हमारे मन में थोथा विचार है कि केवल आंखे बंद करके बैठने से हीं लाभ होता है । यह ठीक है जैसे प्रातः स्नान करते हैं शरीर साफ हो जाता है,Activity (स्फूर्ति) आ जाती है, ताजगी आ जाती है इसी प्रकार प्रात: स्नान करने के बाद कुछ समय के लिए ईश्वर का चिंतन करने से, पूजा करने से कुछ और ताजगी आती है । परन्तु जिनको समय नहीं मिलता है, जैसे स्त्रियां हैं, उन्हें समय नहीं मिलता, वो बेचारी

परेशान रहती है । उन्हें परेशान रहने की कोई आवश्यकता नहीं है । सुबह से शाम तक जो भी हम कार्य करते हैं सभी को हम इश्वर की पूजा का रूप बना दें । एक यज्ञ बना दें । ईश्वर से लौ लगाए रहें । यह जो आम पूजा की जाती है उससे वह हजार गुनी अच्छी है । प्रतिक्षण हम उसकी याद में रहे यहां तक कि लड़ाई कहीं हो जाये तो भी ईश्वर की याद में रहे, ईश्वर को याद रखेंगे तो लड़ाई नहीं होगी । गुस्सा आ जाए तो इश्वर को याद करें । गुरु महाराज को हमेशा सामने देखें । सबके साथ सुंदर व्यवहार करें । जितना भी हमारा व्यवहार हो सेवा का रूप लिए हो । हमारी सेवा प्रत्येक को आनंद देने वाली हो । हमारी पूजा दूसरे की प्रसन्नता के लिए ही हो । शांति देने के लिए ही हो, शोषण के लिए न हो ।

इस समय सारे विश्व में शोषण हो रहा है । एक देश दूसरे देश से लड़ रहा है । एक समाज दूसरे समाज से लड़ रहा है । व्यक्ति व्यक्ति का शोषण कर रहा है । ऊपर से कहते हैं कि नहीं नहीं ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा । एक देश के जासूस दूसरे देश में जाकर खलबली मचाते है । शोर मचाते हैं । मेरे ख्याल से पहले से ही ऐसा होता आया है । मनुष्य का स्वभाव ही शोषण करने का बन गया है इसलिए कुछ लोग कहा करते कि बडी मछली छोटी मछली को खाती है । कहते हैं खाना कैसे खाएं ? सारे लोग ही ऐसे हो गए हैन । सत्संगी होने के नाते मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ? स्वभाव सभी का बदल गया है । ऐसे लोग कमजोर होते हैं । उन्हें सत्संगी नहीं बनना चाहिए । सत्संगी वही बन सकता है जो वीर हो इसलिए भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि “वीर बनो” । “वीरता को अपना कर खूब लड़ो” । संसार तो कुरु क्षेत्र है, युद्ध स्थल है । प्रत्येक को लड़ना है । किससे लड़ना है ? जो भीतर में हमारा मन है उससे । बुद्धि की चंचलता को स्थिर करना है । संतुलन में लाना है । स्थिर करना है । यही हमारी लड़ाई है जब तक इनसे लड़कर हम विजय प्राप्त नहीं कर लेते तब तक न तो हमारा व्यवहार संसार के साथ सुंदर बनेगा , न प्रभु चरणों का अधिकारी ही बनेगा ।

इसलिए अपनी दिनचर्या को ही पूजा का रूप दे दीजिये । यज्ञ का रूप दे दीजिये । दान का रूप दे दीजिये । दान क्या देना है ? सब के साथ मधुरता का व्यवहार करें । मधुर बोले । प्रेम से बोलिए, प्रेम का व्यवहार करिये । जितना आप सेवा करते हैं उसका मुनासिब पैसा तो लीजिये, ज्यादा नहीं । दफ्तर में जाते हैं छः घंटे का काम करना है । तो छह घंटे में आपको होश नहीं रहना चाहिए । पूरा काम करना चाहिए । आप क्या करते हैं अखबार पढ़ते हैं चाय

पीते काम नहीं करते ,तनख्वाह नहीं मिलेगा तो आंदोलन करेंगे, धमकियां देंगे। ईश्वर की हुज़ूरी ईश्वर की प्रसन्नता के लिए, इश्वर का ही काम समझ कर हमें दफ्तर का काम करना चाहिए। बच्चों के साथ बैठे, तो उन्हें ईश्वर की संतान समझ कर ही पूजा करे या उनके साथ खेलें। पति है तो भगवान विष्णु का रूप पत्नी है तो लक्ष्मी का रूप ; संसार को प्रभुमय समझकर ही प्रसन्नता से कार्य करें। उनकी सेवा करें। यह स्वभाव बन जाना चाहिए। ये सबसे अच्छी सेवा है खासकर बहनों के लिए, दफ्तर में जाने वालों के लिए इसका मतलब यह नहीं कि हम प्रातः सायं हमें समय मिले और पूजा पर ना बैठें , बैठना चाहिए। वास्तव में जो कार्य में व्यस्त रहते हैं उनका मन स्थिर रहता है। जो आलस में या व्यर्थ में बैठे रहते है उनका मन स्थिर नहीं होता। विचारों में फंसे रहते हैं मन को गंदा करते रहते हैं।

एक बार भगवान विष्णु ने नारद जी से कहा कि मेरे अमुक भक्त के पास जाइये और उसकी कुशलता का समाचार ले आइये। वहां नारद जी देखते हैं कि जब वह व्यक्ति उठता है तो एक बार 'नारायण' कहता है और सोता है तो 'नारायण' कहता है। पूरे दिन कार्य में व्यस्त रहता है एक दूसरा व्यक्ति प्रतिक्षण नारायण नारायण रटता रहता है, काम कुछ भी नहीं करता उन्होंने पहले वाले व्यक्ति से कहा कि तुम भगवान के कैसे भक्त हो जो भगवान का ठीक से भजन भी नहीं करते, पूजा नहीं करते। वह चुप ही रहा। वह क्रोध में भगवान के पास आए और लड़ने लगे। भगवान ने कहा ठीक है थोड़ी देर में बताऊँगा। यह कटोरा है, इसमें दूध रखा है , इसमें पुष्प हैं। परिक्रमा करके आइये तब मैं बार बात करूँगा। आज्ञा का पालन तो करना ही था। दस बीस कदम चले, ख्याल दूध की तरफ था, इधर उधर नहीं देखा कि भगवान नाराज हो जाएंगे, इस ध्यान से, ईश्वर का ध्यान तो चला गया, नारायण नारायण जो कहते रहते थे वहां से ध्यान तो चला गया केवल दूध में ही ध्यान रहा। इससे एकाग्रता आती है। दस कदम से ज्यादा नहीं चल पाए। डरते जाते, दूध गिर गया तो भगवान नाराज हो जाएंगे। वापिस लौट आए, बोले कि यह काम मुझसे नहीं हो सकता और कोई काम बता दीजिये। भगवान बोले- वो व्यक्ति सारे ही दिन ऐसे ही काम करता है ,उसे कुछ भी होश नहीं रहता। भीतर में मेरी याद में है और काम करता ही रहता है। उसका मन दाएं बाएं नहीं जाता, जिनका मन दाएं बाएं जाता है उनको कहीं भी शांति नहीं मिल पाती। प्रत्येक क्षण मन पर निगाह रखनी चाहिए, यह ऐसी वैसी बातें निरर्थक करता रहता है, इससे आपको ही नुकसान

होता है । यदि आपके भीतर में बुरे विचार हैं तो आपके बुरे विचारों से वायुमंडल भी दूषित होता है कारखानों से वायुमंडल इतना दूषित नहीं होता जितना आपके बुरे विचारों से वायुमंडल दूषित होता है । आप कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है । आप रेडियो सुनते हैं रेडियो स्टेशन से जो तरंग आती है वो आपका रेडियो पकड़ता है और आप सुन लेते हैं । इसी प्रकार आपके शरीर से प्रतिक्षण तरंगें निकलती रहती हैं और वे तरंगे सारे वायुमंडल को शुद्ध अथवा अशुद्ध करती रहती हैं । इसलिए कहते हैं कि संत जहाँ जाता है वह स्थान तीर्थ बन जाता है । उसके शरीर की तरंगों से ऐसा होता है । अच्छे अच्छे विचारों की, आत्मा की तरंगे वहाँ फैल जाती है । वह स्थान शुद्ध हो जाता है और तीर्थ बन जाता है । जहां गंदे आदमी बैठते हैं वहां जाएं तो आपको अनुभव होता है कि आपका मन वहां नहीं लग रहा है, जहाँ आपका मन लगे आप समझ लीजिये कि या तो आपके रोजाना वहां पूजा करने का असर है या कोई संत या महापुरुष वहां आया है और चिन्ह छोड़ गया है ।

अब भी आप देख सकते हैं कि मंदिर में जाइये , गिरजाघर, गुरुद्वारा जाइए, आपको वहां मन लगेगा । हजार हजार साल के मजार है उनके दर्शनों के लिए जाइये । अब भी वहां जाकर बैठते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि हमें किसी ने नशा पिला दिया है । वह संत तो शरीर रूप से वहाँ नहीं है परंतु स्थान को अपनी तरंगों से इतना रंग दिया है कि जो भी श्रद्धा से वहां आता है उसको प्रसादी मिलती हैं । कई स्थानों पर हम गए हैं, गुरुमहाराज के साथ गए । हम पर विशेष आकर्षण या हमारे पर विशेष कृपा (आगरा में एक संत की मस्जिद है वहां बैठकर) मिली, गुरु महाराज के साथ थे । भीतर में ऐसा लगा कि किसी ने हमें इतनी पिला दी कि हमारी आँख नहीं खुली । और भी स्थानों पर जाते हैं । कृपा की प्रसादी मिलती है । इसलिए तीर्थ स्थानों पर जाते हैं । परंतु लोग बाग इसका महत्व समझते नहीं हैं । यही देखते हैं कि बड़ा पवित्र स्थान है, वहां खूब दुकानें लग रही हैं, पकौड़ियां खाई जा रही है, कोई चाय पीने में ही मस्त है , कोई कुछ और कर रहा है , उस स्थान की सारी पवित्रता को हम समाप्त कर देते हैं ।

अमृतसर से पढ़ा गया :---पृष्ठ ११ पत्र सं १, पंक्ति सं ८)

“ मैं आपके वास्ते मुनासिब हाल यह समझता हूँ कि चढ़ाव का अभ्यास बहाल मौजूदा आपके लिए काफी हो गया ”

एक भाई बड़े अच्छे अभ्यासी थी । उनके गुरु महाराज पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज) की विशेष कृपा उन पर थी । उन्होंने अपने गुरुदेव को पत्र लिखा । लिखा था अभ्यास करते करते इतना समय हो गया परन्तु मन अभी तक स्थिर नहीं होता, शांति नहीं मिलती। यही हम सबके भीतर में अभाव रहता है। बड़ी अच्छी अच्छी स्थिति के भाई भी यही कहते हैं उनको पूज्य लाल जी महाराज लिख रहे हैं कि आप जो साधन करते हैं वह आपके लिए काफी हो गया यानि सूरत का जो अभ्यास करते हैं वह तो काफी हो गया। आपकी सूरत की चढ़ाई तो सहस्र दल कंवल तक पहुंच गई । काफी साधना व अभ्यास हो गया । अब इस अभ्यास को आनंदमय बनाने के लिए कुछ अन्य बातों की आवश्यकता है इस तरफ आप ध्यान दें , जैसा मैंने अभी कहा था कि न तो हम मनन करते हैं, न किसी बात पर ध्यान रखते हैं , न ईश्वर और गुरु के गुणों को सराहते हैं । न यह प्रयास करते हैं कि गुरु की सुंदरता को उसके गुणों को अपनाएं । यह हम झूठ बोल रहे हैं और सालों से बोल रहे हैं । सत्संग में इतनी दीर्घ-काल से आने पर भी यह आदत हमारी जाती नहीं है। तो वह क्यों नहीं गई ? घृणा की आदत क्यों नहीं गयी ? घृणा की आदत नहीं जाती, लड़ने की आदत नहीं जाती, खाने पीने की आदत नहीं जाती । रसना का रस, आंखों के देखने का रस, वही चल रहा है । बातें करने में वही रस आ रहा है, जाता क्यों नहीं ? न तो हमने मनन किया, न ईश्वर के गुणों की पूजा हीं की , दर्शन तो दूर रहे। वास्तविक पूजा यही है कि हम ईश्वरीय गुणों की पूजा करें।

(पुनः) इस वक्त इसकी ज्यादा जरूरत नहीं मालूम होती लेकिन तावकते की इंद्रियां मन और दीगर तत्व मगलूब होकर तरतीब में न आवें ।

(अमृतरस पृ० सं ११ पत्र संख्या१ पक्ति १०)

मतलब यह है कि इंसान की इंद्रियाँ और मन अपना ही खेल खेल रहे हैं । मन संकल्प विकल्पों में फंसा हुआ है । वह शरीर इन्द्रियों को अपने वश में किये हुए हैं । वह बुद्धि के विवेक वैराग के गुणों को अपनाता ही नहीं है । इसलिए मन अपनी शक्ति खो चुका है । चंचलता में फंस गया है , आत्मा परमात्मा से, गुरु से प्रकाश नहीं लेती । अर्जुन को इतने प्रश्न क्यों करने पड़े ? प्रभु उसके ऊपर दयालु थे । इसी प्रकार हमारा मन प्रश्न उठाता रहता है । गुरु और परमात्मा की तरफ उन्मुख ही नहीं होता । अपने को प्रकाशित नहीं करता । मनमानी करता है, दिखावा करता है कि मैं पूजा करता हूँ । गंभीरता से प्रेम की तरफ सनमुख होना पड़ेगा । परमात्मा के गुरु के गुणों को अपनाना होगा मन पर उसका प्रकाश डालना पड़ेगा ? अपने अधीन करना पड़ेगा । तब इश्वर प्रेम का संगीत बजेगा । पूज्य महात्मा रामचंद्र जी (लाला जी) महाराज इसी संगीत के लिए कह रहे हैं तभी शांति और आनंद को हम प्राप्त कर सकेंगे । आगे बढ़ने के अधिकारी होंगे । इससे पहले तो जैसे बच्चे के खिलौने के साथ खेल रहे हो । हमारे जीवन में अभी जागृति ही नहीं पैदा हुई है कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? योग क्या है ? परमात्मा क्या है ? आनंद क्या है ? पूज्य लालाजी इसी संगीत के लिए फरमा रहे हैं यदि हार्मोनियम को ठीक तरह से बचाया जाए तो संगीत निकलता है सरस्वती जी की वाणी निकलती हैं । यदि बच्चों की तरह हाथ पैर मारे तो बड़े लोग कहते हैं बंद करो । तो भीतर में एक शांति और आनंद का संगीत होना चाहिए वास्तविक शांति आसानी से नहीं मिलती । खाना खाया स्वाद आया । हम इसे ही शांति मान लेते हैं । यह शांति नहीं है । हमारी कोई आशा बच्चों ने , मित्रों ने पूरी कर दी इसे ही हम शांति मान लेते हैं । यह अस्थायी सुख है जो थोड़े समय बाद दुःख में परिवर्तित हो जाता है । असली शांति तो आत्मा में है । आचरण की नींव को मजबूत करिये ।

हमें अखबार पढ़ने से फुरसत नहीं मिलती । स्वभाव बन गया है अखबार में इतने मस्त हो जाते हैं कि हमें अपना कोई ध्यान ही नहीं रहता । न पूजा का न अन्य आवश्यक बातों का ।

इसलिए पूजा में बैठने से पहले अपनी इच्छा शक्ति को नियन्त्रण में करना चाहिए। साधना के उपाय भी करना चाहिए। अखबार वाले से कह दीजिये कि अखबार एक घंटे बाद दे जाए। दोनों ही लाभ प्राप्त करने हैं। इश्वर से अधिकाधिक प्रार्थना करनी चाहिए। जितनी आपकी अपनी शक्ति लग सकती है उसका उपयोग करना चाहिए। पूज्य लाला जी महाराज ने तथा पूज्य गुरु महाराज ने कहा था, लिखा भी है, कि जो कमजोरी हमने अपने गुरुदेव से कह दी थी वह तो दूर हो गई। जिनको हमने छिपाकर रखा कुछ संकोच के कारण वह कमजोरीयां हमसे अब तक नहीं छूटी। यदि अपना बना लिया है और यदि कोई कमजोरी आपसे नहीं छूटती तो अवश्य कह दीजिये। गुरु आपकी सेवा करेंगे आपके लिए दुआ करेंगे साधन करेंगे उससे आपको अवश्य बल मिलेगा। हमें गुरुजनों से अवश्य कह देना चाहिए।

अमृत रस पृष्ठ संख्या ११ से पुनः पढ़ा गया:--

“लेकिन तावक्ते की इंद्रियां, मन और दीगर तत्व मगलूब होकर तरतीब में न आ जाए। उस वक्त तक लताफत नहीं आती और न असली शांति मिलती है और यह काम बिना तप किये हुए हासिल नहीं होता। आपके वास्ते जो तप लाजिम है वह यह कि तजकिये-नफ्स हो जाए। तजकिये -नफ्स से यह मतलब है कि जो आदात और जज्बात खिलाफ अदब और तहजीब हो रहे हैं वो ठीक हो जावें । तमाम लतायफ मोहज्जिब होकर तकमील को पहुंच जावे। आपका अभ्यास और शगल यह होना चाहिए कि आप अपने हर बेजा उभार और जज्बे को रोक कर मौअत दिल हालत पैदा करें। एक जज्बा और आदत को जिसके आप मकलुब हो रहे हैं अव्वल मराकिबे में सामने रखें और खुदा से खलूसकल्ब के साथ रोजाना इस तरह दुआ कीजिये कि हालते रिक्कत तारी हो जाए। ”

दिल की गहराई से प्रार्थना करनी चाहिए और इस प्रकार प्रार्थना करें कि आपकी आंखों से प्रेमाश्रु की नदी बही उठे।

‘अमृत रस’ पृष्ठ १२ से पुनः पढ़ा गया:--

“और उससे मदद चाहें कि यह आदत मगलूब हो जाये और जज्बात मौअतदिल हो जाये। इंशा अल्लाह फायदा होगा, और काम बनेगा ”

प्रार्थना करने, मनन करने, आचार व्यवहार शुद्ध करने और सदगुणों को अपनाने तथा सद व्यवहार करने के बिना रास्ता नहीं चलेगा , साधना नहीं हो सकती है । अपने मन पर अंकुश लगाना चाहिए । मन शरीर और इंद्रियों पर अंकुश रखें । बुद्धि मन को वश में रख के बुद्धि आत्मा और गुरु से प्रकाशित हो गई । इन बातों को सबको याद रखना है, इन बातों को याद रखेंगे तो हमारी प्रगति थोड़े ही दिनों में विकसित होने लगेगी आप स्वयं अनुभव करेंगे और आपके मित्र एवं पारिवारिक जन अनुभव करेंगे कि आप में कोई विशेष परिवर्तन आ गया है आप के स्वभाव में शांति होगी प्रेम होगा करुणा होगी यहां तक होगी कि जहां बैठेंगे , आपके पास जो भी बैठेगा उसे शांति का अनुभव होगा । जैसा मैं पिछली रात कह रहा था आप एक सुगंधित पुष्प की तरह बन जाएंगे आपसे सुगंध का प्रवाह होने लगेगा आप इसी सुगंधी में औरों पर प्रभाव डाल कर औरों को प्रेरणा देंगे जिससे वह भी अच्छे रास्ते पर चलेंगे । यह प्रत्येक व्यक्ति का काम है एक ही व्यक्ति की सेवा नहीं करनी है आप सब को मिलकर सुगंधित पुष्प की तरह बनना है और अपनी सुगंधी से चारों ओर , परमात्मा के नाम को फैलाना है अपने गुरु के नाम को प्रसारित करना है । यदि व्यवहार शुद्ध नहीं हुआ तो आपकी बदनामी तो होगी हीं साथ में आपके गुरु की भी बदनामी होगी । सत्संग की बदनामी होगी । महात्मा बुद्ध ने बड़ा जोर दिया है कि किसी तरह से संघ की बदनामी ना हो ।

एक बार उनकी सेवा में ५०० भिक्षु इकट्ठे हो कर आये । हम लोग जैसे हर समय बातें करते हैं और वह भी बातें करते रहे । महात्मा बुद्ध उनकी बातों को सुनकर चकित रह गये । ये कैसी बातें करते हैं । ऐसी बात है तो एक गृहस्थ भी नहीं कर सकता । हमारे सत्संगी भाई जब इकट्ठे होते हैं तो ऐसी ही बातें करते हैं । महात्मा बुद्ध शांति के मूर्ति थे । कभी क्रोध नहीं आता था । किन्तु भिक्षुओं का ऐसा आचरण देख कर उन्हें क्रोध आ गया । वे बोले “पांच सौ के पांच सौ आदमी यहाँ से चले जाए । मुझे आवश्यकता नहीं है एक भी आदमी की । ” वे लालची गुरू नहीं थे कि मेरे जितने ज्यादा से ज्यादा शिष्य हों , मेरा नाम हों, ऐसी बात नहीं थी उनमें । उन्होंने इसलिए घर छोड़ा था कि संसार सुखी हो इसलिए घर नहीं छोड़ा था कि वे स्वयं ही सुखी हों । परंतु वही बातें देखी जो घर छोड़ने से पहले थी । सब सब संसार की जितनी बुराई की बातें होती हैं वे ५०० आदमी कर रहे थे , बर्दाश्त नहीं हुआ । उन सब को उन्होंने निकाल दिया सब ने कहा कि हम पश्चाताप करते हैं । गुरु जब डांटता है तो शिष्य

के हित के लिए डांटता है । उन ५०० के ५०० आदमियों ने जाकर विचार किया और अपनी गलती स्वीकार की । और सोचा मनन किया , स्त्री छोड़ी , घर छोड़ा , बच्चे छोड़ आए । फिर आए भगवान के चरणों में । भगवान ने जो डॉटा वह ठीक ही किया । गुरु के प्रति उन्होंने विद्रोह नहीं किया । विचार किया, मनन किया है । पुनः महात्मा बुध के चरणों में जाकर क्षमा मांगी प्रार्थना की । अत: हमें सचेत रहना है । अपने संघ को, गुरु को बदनाम नहीं करना है, सत्संग को बदनाम नहीं करना है । प्रत्येक सत्संगी का व्यवहार सामान्य व्यक्ति से ऊंचा होना चाहिए ।

-------------------० -----------------------------------

उक्त प्रवचन एटा में श्री नरेन्द्र सिंह चौहान के निवास पर हुआ था । इसका उपसंहार पूज्य भाई साहब सरदार करतार सिंह जी ने यों किया :--

मैं श्री नरेन्द्र सिंह चौहान का विशेष आभारी हूं जिन्होंने इस सत्संग का प्रबंधन किया और श्रद्धापूर्वक सबकी सेवा की परमात्मा उनकी सब प्रकार से बरकत करें और धर्म पर चलावें । वे अभी प्रार्थना जो आपने सुनी सब भाई बहन आपस में एक परिवार की तरह रहे । आपस में प्रेम से रहें । दूसरे के दुःख को अपना दुःख और दूसरे के सुख को अपना सुख समझे दूसरों की सेवा करें तभी तो हमारी प्रार्थना का सही मतलब निकलेगा । " सब का भला करो भगवान " । हर काम हम प्रभु के लिए ही समझ कर करें । ऐसा करना चाहिए । जो सब का पालनहार है हम सब भी उसकी संतान हैं जो पिता करता है वह संतान के हित केलिए हीं करता है । इसलिए और तो नहीं अपने परिवार में ही प्रेम से रहें । किसी के प्रति भी कोई हीन भावना न हो । हम सब एक ही है । प्रभु की संतान हैं । कुछ मर्यादा का पालन करना तो ठीक है परन्तु व्यवहार में पूर्णता हो । प्रे म ही एकता है । भारत का यह गौरव रहा है कि जो भी हम नया काम शुरू करते हैं उससे पूर्व ईश्वर का नाम लेते हैं परन्तु दुःख की बात यह है कि केवल रस्म रह गई है इसका

जो सार है वह दूर है । संसार के सब गुणों के समूह का नाम परमात्मा है । यदि हम प्रत्येक काम में परमात्मा की स्मृति रखें तो हमारा काम केवल खुशी से ही नहीं होगा बल्कि स्वयं को भी प्रसन्नता मिलेगी और जिसके साथ हमारा व्यवहार होगा उसको भी प्रसन्नता का

अनुभव होगा । केवल एक ही बात को हम याद रखें । ईश्वर के गुणों को अपनाएं और जो भी काम हम सुबह से लेकर रात तक करें, ईश्वर के गुणों की याद के साथ करें । तो इसी से हमारा उद्धार हो जाएगा । उद्धार का क्या मतलब है ? हमारा मन निर्मल हो जाएगा, ईश्वरमय हो जाएगा । , हमारा मन जो अशुद्ध हो गया है, चिपक गया है , संसार के, साथ अज्ञान के साथ उससे मुक्त हो जाएगा । जिसको हम कहते हैं 'मोक्ष' वह प्राप्त होगी और जन्म मरण के बंधन से छूट जाएंगे । जन्म मरण के बंधन से तभी हम छूटते हैं जब हमारे भीतर में जो संस्कार हैं उससे हम मुक्ति पा लें । तो ईश्वर के गुणों को अपनाते रहे चाहे हम विचार करके उसको माने चाहे जैसे मानें । ईश्वर के गुणों को अपनाते हुए ही करें । संक्षेप में ईश्वर क्या है ? सब कुछ प्रेममय हो जाये, हमारी वाणी में प्रेम हो, हमारे व्यवहार में प्रेम हो । इस से अच्छी पूजा और क्या हो सकती है । रस्म को छोड़ कर इसको क्रिया के रूप में अपना ले । सच्चे बने, स्वयं प्रेम रूप बने और अपने व्यवहार द्वारा ईश्वर के प्रेम को विस्तार दे । जितना इस प्रेम को बांटेंगे उतना ही यह बढ़ेगा एक दाना भी कम होने वाला नहीं यह काम तभी होता है जब हम प्रेम के वितरण में कंजूस हो जाएं ।

राम संदेश, फरवरी १९८३

(४)

जीवन विश्व प्रेममय हो ।

पटना ७-६-१९८०

साधनाकराने वाला विचार विमुक्त होकर बैठे, बस यह समझे कि मैं कुछ भी नहीं हूं । गुरुदेव की ईश्वर की कृपा बरस रही है । आप भी विचारों से विमुक्त होकर कोशिश करते रहे कि मन जितना भी हो कम से कम भागे । दृढ़ता के साथ बैठे । गुरु और शिष्यों में जो द्वैत का भाव है , वह जाता रहे , यह ख्याल नहीं करना कि हम दोनों दो हैं या एक हैं ।

कबीर साहब कहते हैं कि **एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार, जैसा है तैसा रहे, कहे कबीर विचार ।** यह द्वंद है । मन ही तो कहेगा कि वह एक है । वह तो एक से अनेक हो जाता है । परमात्मा तो द्वैत से परे है इसलिए वह दो भी नहीं । वह जैसा है वैसा ही रहता है , ऐसा कबीर दास कहते हैं ।

यह प्रश्न भी खत्म हो जाता है कि प्रएक है या दो । यह सब भाव खत्म हो जाते है । यदि गुरु यह ख्याल करके बैठता है कि “मैं गुरु हूँ” तो संत लोग कहते हैं कि ऐसे गुरु की गर्दन काट देनी चाहिए । शिष्य यदि यह भावना लेकर बैठता कि मैं हीन हूँ तो गलती करता है । सब भावनाओं से मुक्त होकर बैठना है । हमारे यहाँ का साधन प्रेम का साधन है परमात्मा में अपने आप को लय कर देना है इसमें द्वैत नहीं होता । परन्तु थोड़े दिन के लिए एक दूसरे से प्रेम करते हैं , जिससे यह प्रेम बढता बढता हमारा स्वभाव बन जाता है । हम अपने गुरु का परमात्मा का रूप देखें, हमारे कानों में जो स्वर पड़े वह ऐसा मालूम हो कि ॐ कार की ध्वनि है । सब में वही ध्वनि है । ॐ ॐ की आवाज है, अनहद शब्द की झंकार है , भीतर ही नहीं बाहर भी । भीतर में बाहर में सब ओर ईश्वर ही ईश्वर दिखाई दें । जिह्वा से जो शब्द निकले वह मधुर शब्द निकले । ईश्वर का प्रेम लिए हुए हो । हम जो भी व्यवहार करें वह दैवी गुणों को लेकर करें । अप्रयास हो प्रयास न करना पड़े , यह सहज समाधि है । आँखें बंद हैं तब भी, प्रेम से बातचीत कर रहे हैं तब भी प्रेम है , बातों में भी प्रेम है,

व्यवहार कर रहे हैं उसमें भी प्रेम है । सारा संसार हममें समाया है और हम सारे संसार में समाए हैं । यह विश्व भावना हो जाती है । गणेश जी माता के पास गए हैं वह उदास बैठी हैं । वे कारण पूछती है तो माता कहती हैं तुम्हें मालूम नहीं, मेरी पीठ देख । देखा पीठ लाल पड़ गई है जैसे किसी ने पीटा हो । पार्वती जी कहती हैं कि तुमने अभी बिल्ली को पीटा है उसके कारण ही मेरा यह हाल हुआ है । यह प्रेम है जरा इसको अच्छी तरह से देखिये ।

सारा देश का दुःख सुख आप हीं हो जाता है । पिटाई तो बिल्ली की हुई परन्तु दुःख पार्वती जी को पहुंचा । यह विश्व प्रेम की भावना है परमात्मा के साथ एकता होने पर सब के साथ एकता हो जाती है । महात्मा बुद्ध को क्या कष्ट था । उन्होंने १८ बार जन्म लिए । ज्ञानी थे । जिनको आत्मा परमात्मा का ज्ञान होता है उसे 'बुद्ध' कहते हैं । परंतु उन के भीतर में तो व्याकुलता थी । संसार के दुःखों को देखकर वह दुखी होते हैं और सोचते हैं कि कोई ऐसा आसान पद्धति मिल जाए जिसको पाकर संसार मेरी तरह 'बुद्ध' बन जाए, ज्ञानी बन जाए यानी जन मरण के बंधन से छूट जाए, मृत्यु व्यवस्था पर जो कष्ट होता है उससे छूट जाए । शारीरिक रोग जो होते हैं उनसे बच जाए । आत्मिक कठिनाइयां जो होती है उनसे मुक्त हो जाए । प्रेम की राह बताते हैं । कभी हमने भी सोचा है कि हमारे पड़ोसी को आनंद मिले, सुखी रहे । यह निशानी है प्रेम की, महात्मा बुद्ध राजा के पुत्र पुत्र थे, उनके पास धन दौलत थी, सब सुख था, परन्तु दुखी थे, चैन नहीं था । आप सब लोग जानते हैं कि उन्होंने कितना कष्ट उठाया कितना तप किया तब जा कर के उन्होंने इस रास्ते को बताया । उनको एक 'पद्धति' सूझी । पद्धति का मतलब है साधन, सरल साधन ।

यह साधनाएॅ जो मैंने बताई है, सरल है । पतंजलि योग दर्शन में बड़ी कठिन साधनाएं हैं । बुद्ध के हृदय में यह इच्छा थी कि संसार को कोई एक सरल रास्ता बता दे ताकि निर्वाण को प्राप्त हो सके, मोक्ष को प्राप्त हो । यह विश्वप्रेम है । यह हमारे जीवन का लक्ष्य है, हमारा आध्यात्मिक प्रेम है । प्रेम माहन है , बहुत ऊँचा है । हमको इस बात से संतुष्टि नहीं कर लेनी चाहिए कि प्रातः सायं साधना के लिए बैठ गया । कभी कभी सत्संग में भी सम्मिलित हो गए । यह प्रेम साधना नहीं है । हमारे इस वंश के महापुरुषों की यह विशेषता है, सुंदरता है, बरकत है कि जितना प्रेम इस सत्संग में पाया जाता है, वह बाहर नहीं है । परन्तु इस प्रेम ज्योति को सारे संसार में प्रकाशित करना होगा यह केवल मेरा ही काम नहीं है या मैं यह नहीं कहता कि

मैं यह काम नहीं कर सकता। यह काम आप सब का है। काम का मतलब यह नहीं कि किसी मंच पर जाकर आपको प्रवचन देना होगा या प्रचार करना होगा। अपने जीवन को प्रेममय बनाना होगा आपके संपर्क में जो भी आये , उसके साथ जो भी आपका व्यवहार हो उसमें प्रेम हो, ईश्वर प्रेम का विकास हो। घर में कुछ रूप, दफ्तर में कुछ रूप, क्लब में जाते कुछ और रूप है, राजनीति में जाते हैं, वहां कुछ और रूप, ऐसा व्यक्ति साधना का जो लक्ष्य है 'प्रेम' उसका अधिकारी नहीं बन सकता है। एक ही रूप होना चाहिए। राजनीति में जाने के लिए मना नहीं करता। महात्मा गांधी की तरह आत्मिक शांति प्राप्त कर, सुगंधी फैलाइए। कितनी उत्तेजना मिली महात्मा गांधी को, कितनी वेदना मिली उन्हें, परन्तु उन्होंने अपने आदर्श को नहीं छोड़ा। उसी प्रकार हमें भी चाहिए, परिवार में रहे दफ्तर में रहें या अन्य किसी स्थान पर जाएँ हमारा व्यवहार प्रेम का हो। प्रेम की ज्योति प्रकाशित रहे।

इसको स्वामी रामदेव जी ने इस प्रकार बताया है कि जैसे अगरबत्ती चारो और अपनी सुगंधी को फैलाती है वैसे ही आप हम सब को अगरबत्ती की तरह बनना है। अपने प्रेम को चारो ओर फैलाना है, गुरुदेव आपको शक्ति दें। अंतिम लक्ष्य जो हमारा है वह प्रेम है 'आत्मिक प्रेम'। प्रेम ही परमात्मा है Love is God and God is Love.

हम प्रेम में ही स्थित रहें। संसार की आंधिया आए, दुःख सुख आए, परंतु हमारे भीतर की स्थिति स्थिर रहे । आप प्रेम की सुगंधी में विपरीत स्थिति में भी स्थिर रहे। महात्मा बुद्ध ने इस स्थिति को दो रूप में बांटा है। कोई संस्कार न हो, कोई विचार न हो यह प्रेम स्वरूप है मोक्ष का स्वरूप है। यह बिना प्रेमाभक्ति के नहीं प्राप्त हो सकता। अहंकार भी हो, प्रेम भी चाहे, ऐसा नहीं हो सकता है। प्रेम के लिए संतोष, सहनशीलता, सत्यता की आवश्यकता है।

साधना के साथ महापुरुषों की जो वाणी है । उसके जीवन चरित्र उसका अध्ययन करना चाहिए। उन पर विचार करना चाहिए। वास्तव में गुरु के साथ सच्चा प्रेम है तो कुछ भी करने की जरूरत नहीं। पूज्य लाला जी महाराज (आचार्य दिगंत महात्मा रामचंद्र जी भारत महाराज फतेहगढ़) से पूज्य गुरुदेव (परम संत महात्मा श्री कृष्णा जी महाराज) ने गीता पढ़ने के लिए कहा। गीता लाई गई, एक दो दिन गीता का उपदेश दिया फिर कहने लगे छोड़ो। भीतर की गीता पढो यह उन लोगों के लिए है , जो अपना पूरा जीवन गुरु के लिए

निछावर कर देते हैं । उनके लिए तो यह बात सरल है परंतु सामान्य व्यक्ति के लिए बड़ा मुश्किल है । गुरु के गुणों को धारण करना और महापुरुषों की वाणी को पढ़कर उस पर विचार करना है । ईश्वर के गुणों का गुणगान करना होगा । यही तो परमार्थ है । यह कहना है कि गुरु करेगा ऐसा नहीं । या तो हम पूर्णत: न्योछावर कर दे अपने आप को गुरु पर, नहीं तो बीच का रास्ता अपनाएं, गुरु भक्ति को भी अपनाए ,उसके आदेशों का पालन करें और ज्ञान की भी प्राप्ति करें ।

एक महापुरुष से एक भक्त ने कहा कि कौन सी साधना करनी चाहिए ? उन्होंने बड़ी सरलता से कहा कि एक सिपाही लड़ाई में जाता है उसके पास बंदूक भी है , तलवार भी है, बारूद भी, गोला भी है, परन्तु रणक्षेत्र में जिन हथियारों की आवश्यकता होती है उसी को इस्तेमाल करता है । इसी तरह साधक को भी जैसी वृत्ति हो जिस प्रकार का उसका संस्कार हो , व्यापार हो , उसको भी उचित यही है कि वह आचार व्यवहार को अपनाएं । भक्ति जितनी हो सके करें , तब जाकर वह प्रेम के आयाम में प्रवेश पा सकेगा । उससे पहले नहीं ।

यह प्रेम का रास्ता है । हजरत निजामुद्दीन के दरबार में कव्वाल वापिस आ रहे थे । खुसरो मिले, उनसे बातचीत हुई है, खुसरो ने पूछा है कि मेरे गुरुदेव के दरबार से क्या प्रसाद लाये ? यह कव्वाल तो सिर्फ गाना हीं गाना जानते थे, प्रेमी नहीं थे । कहने लगे साहब ! क्या बताएं ? हमारी लड़की की शादी है । घर पर सब इंतजार में होंगे कि हजरत के दरबार में कुछ दौलत मिलेगी । उन्होंने यह अपनी टूटी हुई जूतियाँ दे दी है । वह हम ले तो आये हैं मगर हम इनका करें । प्रेमी के हृदय में और हमारे हृदय में कितना अंतर है । खुसरो बोले यह क्या बात है । करोड़ों की संपत्ति मेरे पास है वह तुम सब ले लो और यह जो नियामत लाये हो मुझे दे दो । उन टूटे हुए जूतों को अपने सिर पर रख कर अपार प्रेम में डूब गए । इस प्रेम को मैं न समझ सकता हूँ ना आप । उनके गुरुदेव ने जब शरीर छोड़ा तो उन्हें पता चला, उन्होंने भी अपने प्राण दे दिए । वे एक महान ईश्वर भक्त और कवि थे । उनका अंतिम दोहा था--

‘गोरी सुवे सेज पे, ओढ़ कासनी खेस , चल खुसरो घर आपने तो क्यों रहै विदेस ?

इसी को पढ़कर वह निर्जीव होकर गिर पड़े थे ।

मीरा जी का प्रेम देखिये, सब कुछ न्योछावर कर दिया उस सांवले सलोने भगवान पर इतनी व्याकुल है कि उनके लिए जाति-पाँती, राज पाट सब कुछ छोड़ दिया। कोई ज्यादा आयु भी नहीं है, अकेली घूम रही हैं। वृन्दावन में एक संन्यासी (जीव गोस्वामी) के पास पहुंचती है महापुरुषों के दर्शन से भी रास्ता साफ हो जाता है। संन्यासी भीतर से कहते हैं कि मैं स्त्रियों से नहीं मिलता। मीरा जी कहती है कि मैं तो अब तक यही समझती थी कि, वृंदावन में केवल एक ही पुरुष है, सांवरा सलोना कन्हैया, बाकी सब स्त्रियाँ हैं। उनका यह दूसरा दावेदार वृंदावन में कैसे पैदा हो गया। यह कह कर वह वहां से चली आई। संन्यासी ने जब सुना तो होश आया। वास्तव में हमारा प्रभु हमारा इष्टदेव ही तो हमारा पति है। हम सब उसकी स्त्री हैं, सब गोपी है। कोई यह कहे कि मैं पुरुष हूँ , संन्यासी हूँ एक विचित्र बात है , भगवान एक ही हैं। उनके हृदय को को चोट लगी।

हम कहते हैं कि तन, मन, धन सब कुछ आपका है। पुरुष तो ऐसे ही कहते हैं परन्तु परमात्मा ने स्त्रियों को यह गुण दिया है। आजकल अधिक विद्या ग्रहण करने के कारण स्त्रियों में कुछ अहंकार आ गया है। परंतु पुरुषों से फिर भी अच्छी है। इसलिए वृंदावन में जितनी स्त्रियां या पुरुष रहते थे , वे सब अपने आप को गोपिया कहते थे।

इन्हीं गोपियों से एक संप्रदाय निकला “सदा सुहागिन”। पुरुष स्त्रियों के ही कपड़े पहनते थे, घूंघट निकालती थी। हमारा भगवान कभी मरता नहीं है, इसलिए हम सदा सुहागिन है। वह स्त्री रूप बन कर साधना करते थे।

इसी साधना को स्वामी रामकृष्ण ने भी किया। स्त्री रूप में गोपी बनकर। स्त्री का जीवन एक साधना का जीवन है ,हमारे बहिनें समझती नहीं है। स्वामी राम कृष्ण ने इतनी एकाग्रता से साधना की कि जो गुण स्त्रियों में होते हैं सभी उनमें आ गये। यहाँ तक कि उन्में मासिक धर्म भी प्रगट हो गया। यह है प्रेम की साधना। स्त्री बन कर भी राम कृष्ण जी ने भगवान के दर्शन किए।

जो स्त्रियां हैं वह अपने गुणों का विकास करें। स्त्रियों का दोष नहीं, दोष पुरुषों का है। स्त्रियों में यह भावना आ गई है कि हम पुरुषों से कम थोड़े ही हैं। अब वह अधिकार मांगती हैं परन्तु अध्यात्म के रस्ते पर अधिकारों को प्रेम से मांगा जाता है। स्त्री दीनता का रूप है और

सहनशीलता के प्रतीक हैं, स्त्री को धरती के समान माना गया है। जैसे धरती पर कुछ भी करें धरती बोलती नहीं, इसी प्रकार स्त्री भी सहनशील है। जब तक पुरुष या स्त्री इन गुणों का विकास नहीं करेंगे तब तक ईश्वर की भक्ति के अधिकारी नहीं बन सकेंगे।

जो मीरा जैसी , हनुमान जी जैसी, या अन्य महापुरुषों जैसी साधना नहीं कर सकते साधना नहीं कर सकते। वह साधारण साधन अपनाये जैसे आचार व्यवहार सुधारना , गुरु भक्ति करना और बुद्धि का सदुपयोग करना। चाहे आचार व्यवहार हो चाहे भक्ति साधन हों, चाहे बुद्धि का साधन हों, चाहे ज्ञान का साधन हों अपने गुरु पर विश्वास करना चाहिए जैसा वह कहे वैसा करना चाहिए। वह आपको बतला देगा कि आपको किस प्रकार का साहित्य पढ़ना चाहिए। यदि प्रेम की कमी है तो शेष सब ठीक है , केवल प्रेम नहीं उत्पन्न होता है (प्रेम से उनका मतलब है जब सत्संग में बैठते हैं तो प्रेम अश्रु औरों की तरह उनके चक्षुओं से नहीं प्रकट होते) ऐसा भाई लोग प्रेमी लोगों का संग करें, मीराजी के, सुएदास जी के भजन गाये। उनके जीवन चरित्र पढ़े तथा अन्य प्रेमी भक्त जैसे अमीर खुसरो या अपने यहाँ के सूफी संत उनकी वाणी पढें। नानक जी की सेवा की है गुरु अंगद देव ने , उन्होंने उन्हें कैसे बदल दिया कोई साधना नहीं की उनउन्हें कैसे बदल दिया कोई साधना नहीं की है, उन्होंने केवल अपने इष्टदेव की सेवा की है। केवल आज्ञा का पालन किया, और कुछ नहीं। छः छः आठ-आठ घंटे आखें बंद करके उन्होंने कोई साधना नहीं की। केवल गुरु के प्रति समर्पित किया है अपने आप को केवल उनके आज्ञा का पालन किया है। ऐसे महापुरुषों की जीवनियां को पढ़े।

भगवान दक्षिण मूर्ति के पास कोई आता था वह मौन रहते थे बोलते नहीं थे। जिज्ञासु को भी कहा जाता था कि वह भी मौन होकर बैठ जाए। ईश्वर कृपा या गुरु कृपा जो मौन से होती है वह प्रवचनों द्वारा नहीं होती। प्रवचनों से मार्ग दर्शन तो मिलता है। कुछ रस भी होता है। परंतु वास्तविक अनुभूति वास्तविक ज्ञान मौन में ही मिलता है। बाहर का मौन भी महत्वपूर्ण हैं परंतु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण अंदर का मौन है। ऐसा कौन है जिस पर किसी भी बात का प्रभाव न पड़ता हो। मौन के द्वार से गुजरकर ही महात्मा के द्वार तक तथा परमात्मा के पास तक पहुँच सकते हैं तो प्रयास करना चाहिए कि सत्संग में बैठे हों या सत्संग न भी हो रहा हो, मौन रहने का अभ्यास करें। आंतरिक मौन में रहने का अभ्यास करें। एक असीम शक्ति उदय होती है अंदर मौन रहने से , जो व्यक्ति हर वक्त बोलता रहता है

वह जो भी बोलेगा वह सही नहीं होगा जो व्यक्तिजो व्यक्ति कभी कभी बोलता है और भीतर में शांत रहता है वो जो भी बोलेगा वो सही बोलेगा इसीलिए आंतरिक मौन का जितना भी अभ्यास हो सके करना चाहिए । बाहर शोर मचता है उसकी चिंता मत करिये कोई क्या कर रहा है इसके भी चिंता न करें , भीतर में आपका मन आपके इष्टदेव के चरणों में लगा हुआ हो बस इतना ही करना है । आगे चलकर यह भी छूट जाता है जाप भी छूट जाता है ,केवल मौन रहता है । यदि ईश्वर की कृपा हो जाए तो आत्मा की अनुभूति हो जाती है । इस मौन के लिए प्रयास नहीं किया जाता, जहां प्रयास होगा वहां मन होगा । जब पूर्ण रूप से अप्रयास हो जाते हैं, तो भगवान आते हैं द्रौपदी जी जब अपने दांतों से साडी निकाल देती है, 'भगवान अब तेरी मर्जी है' , इसी प्रकार हम अपने आपको बलहीन होकर , दीन होकर प्रभु के चरणों में समर्पित कर देते हैं । कुछ आशा या इच्छा नहीं रखते तब ईश्वर की कृपा होती है । हो सकता है कि किसी पर पहले हो जाए किसी पर बाद में पर तो होती अवश्य है । होती तभी है जब हम अपने आप को हम पूर्ण समर्पण करते हैं । उनकी कृपा प्रतिक्षण हमारे पर बरस रही है । वह नहीं उबता पर हमारा मन उब जाता है । बातों में , दूसरे की चुगली सुनने में, दृश्य देखने में खुश रहता है , स्पर्श में खुश रहता है इंद्रियों के खेलकूद में प्रसन्न रहता है । मौन रहना बहुत कठिन है ईश्वर के निराकार रूप की अनुभूति के मौन में हीं हो सकती है, शब्दों द्वारा नहीं । **'जाप मुआ, अजपा मुआ अनहद हूँ मर जाए'** कबीर साहब कहते हैं कि जो जाप है भगवान का नाम है, जो अजपा है वो अप्रयास हो रहा है भीतर में जो अनहद के शब्द हैं वह भी ईश्वर के प्रेम में लय हो जाते हैं । **'सूरती समानी शब्दों में ।** यहां शब्द का मतलब है परमात्मा , सूरती का मतलब है आत्मा , जो हमारे शरीर में वह परमात्मा में लय हो जाती है । फिर जन्म मरण के बंधन से मनुष्य छूट जाता है ।

जो ऊँचे अभ्यासी हैं वह जो भी साधना करते हैं उनके साथ मौन की साधना को भी बढाते जाते हैं जितना भी मौन कर सकें । भीतर का मौन । इसका मतलब यह नहीं कि हमने जो मौन रखा है, वैसे तो हम बोलते नहीं, कलम दवात ली और कागज पर लिख दिया मगर भीतर में संकल्प विकल्प उठ रहे हैं मौन का मतलब निर्विचार हो । कोई संकल्प विकल्प नहीं हो कुछ भी नहीं कुछ कोई बुरा विचार नहीं कोई अच्छा विचार नहीं है, यह कब होता है ? जब साधक अपने आपको ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है यानि अपनी कोई इच्छा

नहीं रखता अपनी कोई आशा नहीं रखता । कोई घटना घटती है तो यदि प्रतिकूल हो तब भी प्रसन्न अनुकूल हो तो अप्रसन्नता के भाव नहीं रखता । तो मौन का भाव है 'अपनी इच्छा न रहे' । यही मौन में जाकर आत्मा में लय हो जाती है । जितना समय मिले जितना आप रह सकते हैं उतना आप मौन रहिये । इसका प्रयास करने से आपकी वाणी में शक्ति आएगी आप जो बोलेंगे गलत नहीं बोलेंगे इसीलिए संतों ने भगवान कृष्ण ने सब ने यही उपदेश दिया है कि हम कम बोले । जब जरूरत हो आवश्यकता हो तब बोलो और अंदर में लय हो जाओ । गुरदेव के चरणोंमें मन लगा रहे ।

प्रभु ने एक बड़ा विचित्र उपकरण मनुष्य को दिया है वह है 'मन' इसको अपने अधीन करना है । हम इसके अधीन न हो , जब चाहे इसका उपयोग कर लें जब चाहे मौन कर लें । क्षमता रखें नंदी बैल की तरह । जब भगवान को आवश्यकता होती है उस पर सवार होने की तो वो तैयार हो जाता है । इस प्रकार आपको भी अपने मन की सवारी करनी है । जब चाहे इसका उपयोग कर लें । इसका ऐसा साधा जाए यह शांत बैठा रहे । परन्तु हमारे भीतर में क्या होता है ? । सब लोग देखें कि हमारे भीतर में क्या होता है , चारो ओर भाग दौड़, अशांति । ऐसा व्यक्ति शांति को कैसे पा सकता है । तो मौन की साधना करनी होगी । यदि बोले तो मधुर बोले । भगवान बुद्ध कहते हैं कि ऐसी बोली बोलिए जिससे किसी को भी हानि या दुःख न पहुंचे ।

कम खाइये । भगवान यह नहीं कहते कि इतना कम खाइए कि आप बीमार हो जाये । भगवान कहते हैं कि इतना खाइए कि शारीरिक और मानसिक रूप से आप स्वस्थ रह सकें आपके शरीर में सक्रियता बनी रहे ।

प्रमादी न बन जाए, सुस्त न हो जाए । भगवान अर्जुन को उपदेश दे रहे है कि वीर बनो । इस संसार रूपी कुरूक्षेत्र में वहीं व्यक्ति लड़ सकता है जो वीर है । वीर बनने के लिए ऐसा भोजन करना चाहिए जिससे शरीर स्वस्थ रहे । खाना पोष्टिक हो, जल्दी बचने वाला हो, सात्विक हो । मुझे लोग क्षमा करेंगे ऐसे भी लोग हैं जो खाना खाने के बाद भी ५०-५० लड्डू खा जाते हैं । फिर वे क्या करते हैं । खाट पर लेट जाते हैं , बीमार पड जाते हैं । ऐसा व्यक्ति न तो संसार का ही कोई कार्य कर सकता है न ईश्वर का हीं भजन कर सकता है ।

भगवान इसलिए कहते हैं कि कम खाओ , कम खाने का मतलब है कि उतना खाओ जिससे शरीर स्वस्थ रहें और ईश्वर का भजन भी हो सके ।

कम सोओ , नींद भी उतनी हो जिससे आपके शरीर को आराम मिल सके । इतना मत सोओ कि प्रमादी हो जाए । संसार के प्रति आप अपने दायित्व न भूल जाए । इतना भी न जागे कि आपके दिमाग में खुश्की हो जाए । संन्यासी लोग बादाम क्यों ज्यादा खाते हैं, घी दूध का सेवनक्यों करते हैं ? इसका कारण यह है कि वह रात को ज्यादा जागते हैं प्राणायम का अभ्यास करते हैं तथा अन्य लोग साधनाएं करते हैं । संसारी लोग कहते हैं कि यह तो मक्खन खाते हैं घी खाते हैं, बदाम खाते हैं यह कैसे संन्यासी हैं ? परन्तु वह क्यों खाते हैं ? वह भगवान के नियमों का पालन न करते हुए प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जाते हैं । इसके कारण उनके दिमाग में खुश्की हो जाती है, इसलिए दिमाग में मक्खन रखते हैं उन्हीं लोगों को भगवान ने आदेश दिया है कि जितना शरीर को जरूरी है अवश्य सोना चाहिए हठ योग नहीं करना चाहिए । हठ योग करने से बहुधा बीमारी उत्पन्न हो जाती है ।

अभी ३०-३५ साल हुए, महर्षि रमण ने शरीर छोड़ा । वे बहुत ही कम बोलते थे जो भी जिज्ञासु उनके पास जाता था । वह भी चुप कर के बैठ जाता था मन में प्रश्न रख लेता था कोई कोई भी व्यक्ति संसार में ऐसा नहीं जो मन में दुविधा न रखे । संसार क्या है ? आगे क्या होगा ? मेरा क्या कर्तव्य है ? जो जिज्ञासु है उसके मन में ऐसे प्रश्न उठते रहते हैं । उनके पास बैठने से जो भी प्रश्न रहते हैं उनके उत्तर स्वयं हीं बिना बोले मिल जाते थे । आप कर के देख सकते हैं । चाहे आप संत के पास बैठे, चाहे परमात्मा की सेवा में बैठे, चुप कर के बैठ जाइए । १० ,१५ ,२० मिनट मौन होकर बैठ जाइये । जो प्रश्न आपके हैं आपको उनके उत्तर मिल जायेंगे ।

महाराष्ट्र में एक बड़े संत हुए हैं एकनाथ जी उनके शिष्य ने उन्हें एक पत्र लिखकर भेजा पत्र खोला गया देखा तो पत्र कोरा है । कागज पर कुछ भी नहीं लिखा गया । इसको देखकर वह बड़े प्रसन्न हुए । उनके पास कुछ जिज्ञासु और भी बैठे थे । उन्हें देख सब चकित हो गए । महापुरुष एक कोरा सादा कागज देखकर क्यों इतना प्रसन्न हुए । गदगद हो रहे हैं । एक नाथ जी ने वही कागज वैसा ही अपने शिष्य के पास भेज दिया । जब

उसके पास पहुंचा और उसने पत्र खोल कर देखा तो उसे भी बड़ी प्रसनता हुई । आप सोचेंगे कि यह क्या बात हुई ? शिष्य ने पत्र भेजा था कोरा , गुरु का विश्वास प्राप्त करने के के लिए कि मेरा चित्त निर्मल हो गया , शुद्ध हो गया , आपकी बड़ी कृपा है। कोई संस्कार नहीं, कोई विचार नहीं, पूर्ण शांति है। कोई अहंकार नहीं। उसके प्रतीक मे कोरा कागज भेज दिया। गुरुदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे शिष्य में इतना परिवर्तन हो गया । मोक्ष को पाने का अधिकारी हो गया , इसी की पुष्टि के लिए उन्होंने भी कोरा कागज वापिस भेज दिया कि तुम्हारा विचार सही है। मोक्ष की स्थिति भी यही है कि कोई संसकार न रहे कोई इच्छा न रहे कोई आसक्ति न रहे।

"कुछ लेना न देना मगन रहना"

गुरु भी प्रसन्न हैं शिष्य भी प्रसन्न है सब मिलता है मौन में । आप भी थोड़ी देर संकल्पों विकल्पों से मुक्त होकर आशा निराशा छोड़ कर समर्पण भाव से मौन में बैठे । इस पवित्र धरती पर अनेकों महान लोगों ने जन्म लिया । ऋषि , मुनि, देवता लोग आए । उन्होंने हमें ऐसा साहित्य प्रदान किया है । जिसका अध्ययन करने से हम अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं । जीवन का लक्ष्य क्या है ? कि प्रतिक्षण हम आनन्द की अवस्था में रहें। इस शरीर के रहते हुए हम निर्वाण–पद कैवल्य-पद , मोक्ष को प्राप्त करें। जब शरीर छूटजाता है तब कहते हैं कि मुक्ति हो गयी, स्वर्गवास हो गया। जिस व्यक्ति को शरीर रखते हुए वास्तविक आनंद की अनुभूति नहीं हुई है मोक्ष की अनुभूति नहीं हुई है। उससे यह आशा रखना यह शरीर छूटेगा तब मोक्ष मिलेगी यह मूर्खता है। भगवान कृष्ण गीता का उपदेश हमें प्रसादी के रूप में दे दिया है। रामायण ऐसा ग्रन्थ है जिसमें जीवन की मर्यादाएं हैं । उपनिषदों में जीवन की दार्शनिकता है , विज्ञान है। किसी अन्य भूमि पर न तो ऐसे महान व्यक्ति पधारे , न ऐसा उंचा साहित्य उन मुल्कों को प्राप्त हुआ। हमारे देश के लोग कितने दुखी रहते हैं । पुस्तकों की हम पूजा करते हैं परन्तु शास्त्रों के भीतर में भी जो लिखा है उसमें जीवन की कला बताई है उधर हमारा ध्यान नहीं जाता। गीता एक महान ग्रन्थ है । सब उपनिषदों में महान उपनिषद हैं । उसकी कुछ विशेष बातें ऐसी हैं जिन्हें हम यदि अपनाए तो हमारा जीवन आनंदमय , कल्याणमय हो सकता है । यह उपदेश भगवान ने किसको सुनाया है अपने प्रिय मित्र अर्जुन को। अर्जुन सारे संसार का प्रतीक बना। उनके द्वारा

हमें यह संदेश प्राप्त हुआ । भगवान ने केवल प्रवचन ही नहीं दिए तर्क से ही उनको समझाने की कोशिश नहीं की है , परन्तु विज्ञान द्वारा अर्जुन को समझाने की कोशिश की है । भगवान बैठे हैं , अर्जुन भी उनकी सेवा में बैठे हैं । एक ब्राह्मण आता है वह बड़ा रोता है । भगवान पूछते हैं, "ब्राह्मण देवता क्या बात है , तुम समझदार व्यक्ति होकर क्यों रोते हो ? वह बताता है कि " भगवान में क्या करू ? मेरा इकलौता बेटा इस संसार में नहीं रहा । उसके बिना मेरा जीवन बेकार है मुझसे नहीं रहा जाता । यदि मेरी मृत्यु हो जाए तो ज्यादा अच्छा है" । पास ही अर्जुन बैठे, हैं । शास्त्र ज्ञाता थे ही, व्यावहारिक जीवन भले ही न व्यतीत किया हो । भगवान के चरणों में रहते थे, अत एव उन्हें बहुत कुछ आता था । ब्राह्मण से कहते हैं " हे ब्राह्मण ! आत्मा भी कभी मरती है ? किस बात के लिए रो रहा है । हाड़ मांस के लिए रो रहा है ? क्यों रोता है आज नहीं तो दस दिन बाद उसको जाना था, फिर क्या रोने की आवश्यकता है ? " भगवान भी ब्राह्मण से कहते हैं कि हे ब्राह्मण ! समझो , समझने का प्रयास करो अर्जुन ठीक कह रहा है । भगवान की आत्मिक रश्मियां ब्राह्मण में जाती है और उसे शांत करती हैं । साधारण व्यक्ति के उपदेश में और महापुरुष के उपदेश में यही अंतर होता है । साधारण व्यक्ति सिर्फ बात कहता है परंतु महापुरुष जो बात कहते वह अंदर तक समा जाती है क्योंकि उनकी बातों में आध्यात्मिकता का अंश होता है ।

दूसरे दिन रणभूमि अभिमन्यु की मृत्यु हो जाती है । अब अर्जुन शोक से पागल हो रहा है । पागल होने की बात ही थी । जिससे दुःख होता है वही जानता है कि दुःख क्या चीज होती है । ऊपर के लोग तो व्याख्यान करते हैं । भगवान के चरणों में रहकर अर्जुन ने ईश्वर की गति में अपनी गति को नहीं मिलाया , यह अर्जुन का दोष था । इसी को समझाने के लिए भगवान ने एक दिन पहले यह ड्रामा खेला । अर्जुन से भगवान कहते हैं की तू कल ब्राह्मण को क्या प्रवचन दे रहा था , क्या व्याख्यान दे रहा था । आत्मा तो कभी नहीं मरती है । आज तुझे यह क्या हो गया । अर्जुन अपने भीतर लज्जित होता है । "भगवान आप महान हैं" आपके समझाने का तरीका महान है । आप मेरे गुरु ही नहीं है , आप मेरे सम्बन्धी ही नहीं हैं , आप मेरे सब कुछ हैं ।

गीता हमें सिखाती है कि हमारे भीतर में आसक्ति न हो । अनासक्त जीवन व्यतीत करने की कोशिश करें । महात्मा गांधी ने जो गीता का अनुवाद किया उस पुस्तक का उन्होंने

नाम ही रखा है 'अनासक्त योग' । इस जीवन में ही मनुष्य अनासक्त रह सकता है । गीता का सार हीं यह है कि हम मोहग्रस्त न हो । यह बात कहने में तो सरल लगती है परन्तु हमारा जीवन इतना मोहग्रस्त हो गया है कि हम इससे मुक्त नहीं हो पा रहें । कबीर साहब भी कहते है कि

"मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है तो तुज्झ " ।

तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मुज्झ " ?

यही गीता का उपदेश है, मेरा कुछ भी नहीं है ? शरीर के साथ जिनका संबंध हैं वह भी तो मेरे नहीं । धन दौलत भी मेरे नहीं , विचार भी मेरे नहीं । सिकंदर बादशाह अपने साथ क्या ले गया सब जानते हैं । इतिहास पढ़ते हैं और यह जानते भी हैं कि हमारे साथ कुछ भी नहीं जाएगा । तब भी हम यही समझते हैं कि संसार में जो कुछ है सभी हमारा है । हमारे साथ ही रहेगा । अज्ञान के कारण मोहग्रस्त हो रहे हैं । इसलिए भगवान दूसरेअध्याय से जहां गीता शुरू होती है (पहले अध्याय में तो केवल भूमिका ही है) अर्जुन से कहते हैं कि अज्ञान का त्याग करो । अभिमान का त्याग करो । मोह का भी त्याग करो । आत्मस्थिति होकर अथवा परमात्मा में लय हो कर इस धर्म क्षेत्र में वीर बनकर साहसी बनकर इस संग्राम में जूझना चाहिए । यह जीवन भी एक संग्राम है इसमें वे ही जूझ सकते हैं जो वीर हैं । जिनके भीतर में आसक्ति नहीं है । अर्जुन जैसे वीर मूर्छित हो जाते हैं तो आपका और मेरा कहना ही क्या है । छोटी सी तकलीफ आ जाती है तो अपने आप को हम भूल जाते हैं । गीता के उपदेश को भूल जाते हैं । भगवान राम की मर्यादा, उनका जीवन भूल जाते हैं । यहीं से गीता शुरू होती है और यही गीता को खत्म किया जाता है । भगवान कहते हैं "अर्जुन, और कुछ नहीं कर सकते हो, और कुछ समझ में नहीं आ रहा है, विराट रूप दिखा दिया है, भूत भविष्य दिखा दिया, तुम्हें भक्ति योग भी बता दिया , कर्मयोग , राजयोग भी बता दिया, ज्ञान योग भी बता दिया, संन्यास भी बता दिया, अब भी तुम्हें होश नहीं आया तो हे वीर ! मेरे मित्र , और कुछ मत करो, कर्म और कर्म के फल में आसक्ति का त्याग कर दो । मुझमें , मेरे चरणों में, अपने आप को समर्पण कर दो । कर्मफल को भी मेरे ही चरणों में समर्पण

कर दो । तुम तनिक भी आसक्ति न रखो । तुम क्यों चिंता कर रहे हो , मैं तुम्हारी चिंता करूँगा ।

बच्चा माँ की गोद में जाता है, अचिंत होकर, निर्भय होकर । तुम बच्चे की तरह रहो । माँ के रहते हुए, क्या बच्चा भय खाता है ? क्या उसके भविष्य का भय रहता है ? क्या कोई चीज खो जाए तो उसे चिंता रहती है । वो माँ की गोद में आनंद से रहता है । “सब कुछ तो मुझमें ही अर्पण कर दो” अपने आप को भी मुझ में लय कर दो । मेरे में लय क्या करेगा ? यह जो पांच तत्व है वह ईश्वर में लय कैसे होंगे । जो तीन गुण हैं वह ईश्वर में लय कैसे होंगे ? लय केवल आत्मा हो सकती है परमात्मा में । भगवान समझा रहे हैं कि यह जो पांच तत्व है तीन गुन है यह नश्वर है, अस्थायी है इनको छोड़ो । आसक्ति का त्याग करो । सत्य की अनुभूति करो । आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो । आत्मा को परमात्मा में लय करके हमेशा के लिए सदा के लिए तुम अमर हो जाओ । गीता का एक शब्द है ‘आसक्ति’ यानी ‘मोह’ । इसका त्याग कर के मोह रहित हो जाओ । मगर यह सहज में छूटता नहीं ।

भगवान विष्णु नारद को भेजते हैं कि वैकुंठ खाली पड़ा है, मनुष्य को प्रेरणा दो कि वैकुण्ठ में में पधारे । नारद जी जा रहे हैं , बड़ी गर्मी पड़ रही है । एक व्यक्ति सिर पर बोझ रखे , चला जा रहा है । कह रहा है कि कितनी गर्मी है , कितना बोझ है सिर पर । ऐसे जीवन से तो अच्छा है मौत आ जाए तो मैं सुखी हो जाऊं । नारदजी सोचते हैं कि यह व्यक्ति वैकुंठ में जाने का अधिकारी है । उनसे बात करते हैं और कहते हैं कि, हे मित्र भगवान ने तुम्हें निमंत्रण दिया है , तुम मेरे साथ वैकुण्ठ में चलो । तुम्हें वहां बड़ा आराम मिलेगा, शांति मिलेगी, सुख मिलेगा । मौत से सब डरते हैं । शरीर छोडने के लिए सभी लोग भी खाते हैं । गीता में भगवान उपदेश दे रहे हैं ‘अभी’ बनो । नारद जी से वह कहता है कि अभी नहीं, अभी तो बच्चे छोटे छोटे हैं । फिर कभी आइये तब चलूंगा नारद जी १० - १२ साल के बाद आए । बच्चे बड़े बड़े हो गए । उसी व्यक्ति को देखा तो वह बैल बना हुआ है उससे कहा “अरे मूर्ख, मनुष्य चोला छोड़कर तूने पशु योनी अपनाइ है । क्या बात है ? तू चल मेरे साथ । ” वह कहता है “ महर्षि, मेरे बच्चे प्रमादी है, । खेत में मेहनत नहीं करते, मैं खेत जोतता हूँ । यदि ऐसा न करूंगा तो बच्चे भूखे मरेंगे” । यह कोई हँसने की बात नहीं है । प्रत्येक माता पिता, प्रत्येक व्यक्ति में यही विचार उठा करते हैं । यदि मैं संसार में नहीं रहूंगा

तो संसार का काम नहीं चलेगा । फिर समय मांगा है । समय की समाप्ति पर नारद जी फिर आते हैं तो वह कुत्ता बना हुआ है उसने नारद जी से फिर वही बात कही कि इनके पास धन है और यह सोते रहते हैं तो चोर धन उठा के ले जाएंगे । आप फिर थोड़े समय के बाद आइए । फिर आते हैं तो वह गंदी नाली का कीड़ा बना हुआ है । कहते हैं मूर्ख, तेरी क्या दशा है । सब सुखों को छोड़कर तू कहाँ पड़ा है । मुझे तुझ पर बड़ी दया आती है । क्या कर रहा है ।” तो वह कीड़ा क्या कहता है । “ महर्षि , आप मेरे पीछे क्यों पड़ गये हैं । क्या कोई और मनुष्य यहाँ नहीं रहा है जो वैकुण्ठ जाने को तैयार हों । आप जाइये मेरे पीछे क्यों पड़े हैं ? ” यह है आसक्ति का रूप ।

जितने महापुरुष हुए हैं । उन्होंने अपने जीवन से शिक्षा दी है कि किस प्रकार हम अनासक्त जीवन व्यतीत करें । गुरु गोविन्द सिंह जी (जिनका जन्म यहां पटना में हुआ था) कि नौ वर्ष की आयु में पिता से बात होती है कि बादशाह शहीदी मांगता है । वह बालक कहता है कि पिताजी जल्दी करिये । देश की रक्षा के लिए इसे शुभ दिन और कौन सा हो सकता है । अपना जीवन बलिदान कर दिया । नौ वर्ष का बच्चा क्या जनता है देश का विचार । सैकड़ों बहिनें रोज़ उठाई जाती थी । सवा मन जनेऊ लोगों के शरीर से उतरवाए जाते थे , उनकी होली खेली जाती थी । जलाए जाते थे । तो बच्चा कह रहा है कि “ पिताजी जल्दी कीजिये, चार बच्चे हैं ” । चार बच्चे हैं छोटे छोटे । दो बच्चे सात साल और नौ साल के हैं , दिवालों में जिंदा ही चुन दिए जाते जाते हैं । जरा ध्यान करिये कि जीवित बच्चे, नन्हे बच्चे , मासूम बच्चे, दीवालों में चुने जाते हैं । एक एक ईट रखते हुए बालक जिंदा ही चुन लिए जाते हैं । दो बच्चे हैं बारह साल या चौदह साल की आयु के । हजारों की मुगल की सेना के सामने और उन छोटे-छोटे नन्हे मासूम बच्चों को हाथ में तलवार पकड़ा कर कह रहे हैं “जाओ देश की रक्षा करो और इस सेना से लड़कर शहीदी लो ताकि लोगों को प्रेरणा मिले । जो सो रहे है, जाग्रत हो जाए । जो जुल्म हो रहा है उसके खिलाफ विद्रोह करें । के दो नन्हे बच्चे तो जा चुके हैं और दो नन्हे जा रहे हैं । जानते हैं कि यह मर जायेंगे । फिर भी एक छोटी सी पहाडी है उसपर बैठकर यह लीला देख रहें हैं । उन बच्चों से कह रहें हैं “जाइए, सेना से जूझिये” । कोई पिता कर सकते हैं ऐसा । उस महान व्यक्ति के अंदर में ईश्वर का तेज था, कोई आसक्ति थी हीं नहीं । दोनों बच्चों का बलिदान दिया । गुरु माता आके कहती हैं कि मेरे

चार लाल कहाँ है ? गुरुदेव कहते हैं कि चिंता करने की क्या बात है । “ चार मुए तो क्या भया” , यह संगत बैठी है । भाई लोग बैठें हैं । ये क्या मेरी संतान नहीं हैं ? आप क्यूँ चिंता कर रही है ? आप क्यों इतना आसक्ति दिखा रही है । क्यों इतना मोह दिखा रही हैं ।

इसी तरह एक जिज्ञासु जानने की इच्छा रखता है । एक जिज्ञासु पांचवीं बादशाही (गुरु अर्जुन देव जी) की सेवा में पहुँचता है । उनसे प्रार्थना करता है कि प्रभु राजी व रजा क्या है अर्थात अपनी गति को ईश्वर की गति मिलाने का क्या अर्थ है । यह मुझे समझाइए । गुरु देव कहते कि हमारे भाई हैं, भगीरथ जी , आप पहले उनके पास जाइये , फिर मेरे पास आइये । जाते हैं । गुरुदेव का आदेश जाके सुनाते हैं । वह कहते हैं कि रहिये मेरे पास, मुझे बडी प्रसन्नता होगी । स्वागत किया है , खाना खिलाया है, सायंकाल कहा है कि चलिए बाजार चलिए । बाजार से सामान खरीदा है विवाह का । लड़के की शादी है । कबीर साहब के वक्त में भी ऐसी हीं घटना हुई है । और मृतक के लिए जो सामान खरीदा जाता है वह भी लिया । जिज्ञासु पूछता है -“साहब आप यह क्या कर रहे हैं ? एक तरफ आप विवाह का सामान खरीद रहे हैं और दूसरी ओर मृतक के संस्कार का क्रियाकर्म का भी सामान खरीदा है । मुझे कुछ समझ में नहीं आता । वह महापुरुष कहते हैं, “देखते जाओ, गुरु महाराज ने आपसे कुछ कहा तो नहीं । यही तो कहा है कि वहां जाकर देखते रहना” । शादी हो गई, रात को लड़के को सांप ने डसा । उसकी मृत्यु हो गयी । जो कन्या आई है, विधवा हो गई । वह जिज्ञासु पूछता है कि ‘जब आपको मालूम ही था कि आपके लड़के को नहीं रहना है तो इस कन्या ने कौन सा पाप किया था जिससे आपने उसको इतनी अल्पायु में विधवा कर दिया ?

उन्होंने बतलाया कि यह पिछले संस्कार थे जो पूरे होने थे । इसमें मुझे दुःख मानने की क्या जरूरत है ? ऐसा होना ही था । मैं तो एक नट की तरह हूँ । निर्देशक की जो आज्ञा थी उसका ही मैंने पालन किया है । लड़का मेरा था । जितने दिन मेरा था मैंने उसकी सेवा की । संस्कार खत्म हो गए । अब मेरा उससे क्या सम्बन्ध ? तब उस जिज्ञासु को अनुभव हुआ कि संसार में कुछ लोग ऐसे हैं जो अपनी गति को ईश्वर की गति में मिला सकते हैं । गति में मिलाना हीं नहीं, उसमें प्रसन्नचित रहें । दुःख उठा कर तो सभी मान लेंगे प्रभु तेरी इच्छा है । भगवान ऐसे हीं ठीक है । उसकी लीला में संतुष्ट रहें । आनंद में रहे । वह जिज्ञासु फिर गुरुदेव की सेवा पहुंचे हैं । गुरुदेव भी महान ईश्वर प्रेमी थे । कहते हैं ठीक है , तुम देख

आए हो , अभी और तमाशा देखिये । अपनी जीवन से बतलाते हैं कि ईश्वर की गति में किस प्रकार प्रसन्नचित रहते हैं ।

बादशाह जहांगीर नाराज हो जाते हैं । लाहौर में जून के महीने में बहुत गर्मी पड़ती है । धर्म परिवर्तन न करने पर उसने गुरु महाराज को कैद करा लिया है और अपने कर्मचारियों को आज्ञा कि आग जलाई जाए । एक बड़ी लोहे की चादर उपर रखी जाए । उस पर गुरु महाराज को बैठाया जाए । गरम-गरम रेत, उसके ऊपर डाली जाए । अकस्मात मृत्यु हो जाए तो कोई बात नहीं । परन्तु इस दुःख को कौन बर्दाश्त है । अंदाजा लगाइए कि जून के महीने में कितनी गर्मी पड़ती है । लाहौर में 118°F का तापमान रहता है । नीचे आग जल रही है । लोहा गर्म हो रहा है, उस पर बैठाए गए हैं, उस पर गर्म गर्म रेत डाली जा रही है । उस समय के एक महान सूफी संत (मियां मीर) गुरु महाराज की ऐसी दशा देखने आते हैं । कहते हैं कि यदि आज्ञा दे तो तो जहाँगीर का तख्त पलट दूँ । गुरुदेव कहते हैं “ कृपया शांत रहे ” ,ईश्वर की ऐसी ही मौज है, ऐसे ही लीला है । इस लीला को देखिये और प्रसन्नचित रहिये । उस समय उनके पवित्र मुखारविंद से कौन से शब्द निकलें । **“तेरा भाणा मीठा लागे, नाम पदार्थ नानका”** -- हे प्रभु, तेरी जो लीला हो रही है उसमें मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है । मुझे और कुछ नहीं चाहिए । सुना रहे हैं मियां मीर को । (लाहौर के पास एक स्टेशन है उसका नाम मियां मीर सूफी के नाम से ही प्रसिद्ध है) ‘मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, केवल तेरा प्रेम चाहिए’ , शरीर से कोई मोह नहीं है । जीवन में कोई मोह नहीं है । यदि शरीर टूट जाता है तो कोई बात नहीं । आत्मा अमर है । उस पर किसी अग्नि का कोई प्रभाव नहीं हो सकता । महापुरुष अपने जीवन से हमें शिक्षा देते हैं । यही शिक्षा भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दी है गीता में । हम लोग रोज गीता पढ़ते हैं परन्तु जो सार है उसको अपनाने की कोशिश नहीं करते । यदि इसको हम अपनावें तो हम दुखी क्यों हो । कोई व्यक्ति दुखी होना नहीं चाहता मगर करना भी कुछ नहीं चाहता । इसलिए आप सबसे अनुरोध है कि महापुरुषों के जीवन का अध्ययन करें । उनका जीवन हीं हमारे लिए शास्त्र है, उपदेश है । उनके जीवन का अनुसरण करें । गीता के उपदेश को अपनाएं । भगवान राम की मर्यादा को अपनाएँ , उपनिषदों के ज्ञान को अपनाए, संतों के जीवन को अपनाएँ । उनके जीवन का अनुसरण करने से हमारा जीवन दुःख रहित हो जाएगा । चाहे कितने ही कष्ट आ जाएँ , हमारे भीतर की शांति विचलित नहीं

होगी। हमारा मन विक्षिप्त नहीं होगा, वह विक्षिप्त तभी होता है, दुःख तभी मानता है जब तक हम अज्ञान में रहते हैं। हमारे में अज्ञान तब तक है जब तक हमारे में आसक्ति है। जब तक हमारे में सच्चा प्रेम नहीं है ,सच्ची भक्ति नहीं है, सच्चा ज्ञान नहीं है, आप दुखी रहेंगे। इसीलिए आप सबसे अनुरोध है, करबद्ध प्रार्थना है कि केवल बातों को सुना नहीं जाए। किताबों की हीं पूजा न की जाए। किताबों में जो ज्ञान है उस ज्ञान की जो गंगा है उसमें स्नान किया जाए। अपने भीतर में शांति रखें। कितनी भी दुखद घटना आ जाए कितना ही सुख आ जाये, हमारी समता भंग न हो और जब तक समता नहीं बनेगी मानसिक संतुलन नहीं बनेगा तब तक सच्ची शांति नहीं मिलेगी। भगवान अर्जुन को यही समझा रहे हैं मोह छोड़ , आसक्ति का त्याग कर। अठारहो अध्यायों में इसी एक शब्द का विस्तार है।

अज्ञान को छोड़ कर मोह का त्याग करें। मोह का त्याग करने से क्या होगा ? समता आ जाएगी, मानसिक संतुलन आ जाएगा। प्रत्येक परिस्थिति में चाहे अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हमारा चित् आनंदमय रहेगा। जब तक चित्त आनंद में नहीं रहता तब तक आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती। इसलिए भाई बहनों से बार बार कहता रहता हूँ , कभी कभी मेरी बात को भी लोग बाग कहते हैं कि एक ही बात को यह बार बार क्यों कहते हैं ? ये सत्यता है कि जब तक भीतर प्रसन्नता नहीं आती , आनंद नहीं आएगा, तब तक आत्मा की समीपता नहीं होगी, आनंद और सुख और सच्ची प्रसनता कब मिलेगी जब हम संतोष को अपनाएंगे।

भगवान कृष्ण ने गीता में तीन प्रकार के तप कहें हैं। शरीर का तप , मन का तप बुद्धि का तप। मन के तप के लिए (कासरगोड के) स्वामी रामदास जी ने भगवान के उपदेशों को बड़ी ही सरल भाषा में इस प्रकार बताया है। तीन बातें हमें अपनानि चाहिए। तितिक्षा-- वही बात आ जाती है जो मैं अभी अर्ज कर रहा हूँ। सुख को भी हजम करें। तितिक्षा के दो अर्थ होते है एक तो गर्मी सर्दी को सहन करें। दुःख सुख आ जाए तो शरीर हमारा सहन कर ले। किन्तु वास्तविकता में तितिक्षा तो है अपने अंदर की मस्ती। यदि कोई हमें गाली देता है तो हमें दुःख न हो। यदि कोई हमारी स्तुति करता है तो हमें अहंकार न हो। इसका उदाहरण महात्मा बुद्ध का जीवन है। उनकी सेवा में दो जिज्ञासु आए। एक ने खूब गालियाँ सुनाई। एक उपहार लेकर आया। भगवान बुद्ध समता के स्वरूप थे। आप उनकी तस्वीर देखिए।

शांति मिलती है उनकी तस्वीर देखने से ही तो उनके भीतर में कितनी शांति है। कुछ देर बाद दोनों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि यदि कोई उपहार लेकर आये और उसे स्वीकार न किया जाए तो उपहार किसका होगा ? दोनों व्यक्तियों ने कहा कि जो लाएगा उसी का होगा। भगवान गालियां देने वाले को कहते हैं कि तुम अपनी गालियां वापस ले जाओ, मिष्ठान्न जो लाया था उसको कहा कि इसको प्रसाद समझ कर वापिस ले जाओ। यह है तितिक्षा, सहनशीलता। यह तो संसार है इसमें सब ओर से हमें उत्तेजना मिलेगी ही। लोग तो हमें उत्तेजना देते हैं बहुत कम। परिवार के लोग ज्यादा उत्तेजना देते हैं। तो तितिक्षा का अभ्यास करना चाहिए , संतोष को अपनाना चाहिए। सहनशीलता को अपनाना चाहिए।

दूसरा है उदासीनता। कोई आशा मत रखिये। कोई इच्छा मत रखिये। इच्छा रखेंगे और यदि इच्छा की पूर्ति नहीं होगी तो मन दुख मानेगा। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि संसार में जीतना सुख है सब मेरे पास आ जाये और सारा संसार मैं जो सोचता हूँ उसके अनुकूल चले। यह सोचना मूर्खता है, उदासीनता अपनानी चाहिए , अपना कर्तव्य करना चाहिए शास्त्र के अनुकूल, गुरु के उपदेश के अनुकूल और भीतर की जो चेतना है उसके अनुकूल। क्या परिणाम होगा उसकी चिंता न करिए।

आप संसार की सेवा करें अपने व्यवहार से मधुर वाणी द्वारा। संसार से कोई आशा मत रखिये। उदासीन वह नहीं है जो संतों के कपड़े पहन लेता उदासीन वह है जो मन से संसार में उदासीन हो जाता है। यह संसार स्थायी नहीं है इसको महात्मा बुध ने दो शब्दों में कहा है अनित्यता का बोध यानि कोई वस्तु नित्य नहीं है परमात्मा के सिवाय। न यह शरीर रहने वाला है न संबंधी रहने वाले हैं न धन रहने वाला है न यह मकान रहने वाला न सुख रहने वाला है न दुख रहने वाला है। सब अनित्य है। जिसको अनित्यता का बोध हो जाता है ज्ञान हो जाता है वह उदासीन हो जाता है। उदासीनता का मतलब है भीतर में समझ में आ जाना चाहिए ज्ञान आ जाना चाहिए कि यह संसार तो नित्य रहने वाला नहीं , स्थायी नहीं, तो इसके प्रति मोह क्यों होना चाहिए। आसक्ति क्यों रखें , संसार से मन को हटा कर इश्वर से अनुराग किया जाए। यदि संसार के साथ उदासीनता की जाएगी इश्वर के साथ प्रेम नही किया जायेगा तो मन में निराशा उत्पन्न हो जाएगी , दुःख उत्पन्न हो जायेगा। यह एक ऐसी अवस्था होती है कि हर उसको बर्दाश्त नहीं कर सकता। उदासीनता के साथ

इश्वर से अनुराग होना चाहिए । तीसरी बात है ‘नमस्कार ‘ । किसको ? सारे जग को सारे विश्व को । क्यों ? प्रत्येक रूप में इश्वर व्यापक है । हम इन रूपों को नमस्कार नहीं करते हैं वरन इन रूपों में जो आत्मा और परमात्मा विद्यमान है उसको नमस्कार करते हैं । सभी को नमस्कार करेंगे श्रद्धा विश्वास के साथ, तो आपके ह्रदय में किसी के प्रति ग्लानि उत्पन्न नहीं होगी चाहे आपके प्रति कोई कितनी हीं बुराई क्यों न करे । कितनी हीं आपकी हानि हो जाए , चाहे कोई दुःख पहुचने की चेष्टा करे । आप तो भगवान राम की तरह लक्ष्मण को रावण के चरणों में भेजेंगे की जाइए , उससे आध्यात्मिकता का ज्ञान लीजिये । भगवान राम के ह्रदय में रावण के प्रति द्वेष भावना नहीं है । उसके भीतर में वही आत्मा और परमात्मा है । जब सबके साथ आपका प्रेम होगा सबमे आप इश्वर का रूप देखेंगे , सब कार्य इश्वर के लिए हीं करेंगे , सब रूपों को सुख, आनन्द पहुचाने के लिए कर्म करेंगे तो आपके चित्त में कितनी प्रसन्नता उत्पन्न होगी । यह मन का तप है जो गीता में भगवान कृष्ण ने समझाने की कोशिश की है उसको सरल शब्दों में स्वामी रामदास ने तीन शब्दों में समझाया है ।

तो हमे भी इस जीवन यात्रा में कुछ तप करना पड़ेगा और भगवान ने जो तप बताया है तितिक्षा, उदासीनता, नमस्कार , इश्वर प्रेम, सबका सम्मान करना , सबकी इज्ज़त करना , ऐसा करने से प्रत्येक व्यक्ति को वास्तविक सुख, आत्मिक सुख , आनन्द की अनुभूति हो सकती है । इश्वर के साथ प्रेम करिये या जो इश्वर के जो प्रेमी हैं उनकी सेवा करिये , एक हीं बात है । जिस व्यक्ति के भीतर इश्वर के गुण व्यक्त हैं उस व्यक्ति की सेवा करिये । केवल सेवा करने से हीं हमारा उद्धार हो जायेगा ऐसे लोगोंकी सेवा करने का मतलब है की उसके जीवन का अनुकरण करना । **“तू तू करता तू भया , मुझमे रही न मै ”** यानि उस व्यक्ति की सेवा करते हुए , उसके जीवन को अपनाते हुए , उसके जीवन की जो अच्छी बातें है उन्हें अपनाते हुए वैसे हीं बन जाएँ । बड़ा सरल साधन है, कौन पढ़ेगा ज्ञान की पुस्तकें , बड़ा कठिन है । यह रास्ता सरल है । इश्वर कृपा से यदि ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए जिसका रोम रोम इश्वर प्रेम से रंगा हुआ है, ऐसे व्यक्ति की सेवा करें । इससे हमारे जीवन का उद्धार हो जायेगा । राम संदेश मार्च १९८३

(५)

ईश्वर को पाने के लिए

वैराग्य-वृत्ति अपनानी होगी

मुजफ्फरपुर ,दि० ८ -६-१९८०

स्वामी विवेकानंद जी के जीवन की घटना है। परिवार बड़ा है। मां को आशा है कि मेरा बेटा पढेगा और परिवार की सेवा करेगा। विवेकानंद भीतर में दुखी हैं । परिवार की गरीबी देखकर बेचैन होते हैं। आप खाना नहीं खाते है। घर में जाते हैं तो मां कहती है की खाना खा लो बेटा, वह कहते हैं खा लिया, कई दिन से भूखे ही रहते हैं। झूठ बोल जाते हैं माँ के सामने। श्री राम कृष्ण परमहंस के पास आए हैं। बाबा नौकरी दिलवा दीजिए। बाबा कहते हैं “जा माँ काली के पास जा। जो मांगेगा मिलेगा।” विवेकानंद जी को वे बहुत प्यार करते थे। मां के पास जाते हैं, गए हैं नौकरी मांगने के लिए परन्तु वहां जाकर माँ का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उसके मांगने की कुछ भी इच्छा नहीं रहती। गुरु के पास जब सच्चा जिज्ञासु आता है, वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। वह प्रेम में इतना भीग जाता है कि उसके भीतर मे कोई इच्छा या आशा रहती ही नहीं। जब विवेकानंद जी के माँ पास से आते हैं , तो स्वामी जी पूछते हैं कि क्या नौकरी के लिए तूने प्रार्थना की ? वह कुछ नहीं कह पाते बाबा कहते हैं कि पुन: जाओ । विवेकानाद जी दूसरी बार जाते हैं फिर वही हालत होती है और जब वापस आते हैं तो बाबा वही बात पूछते हैं। लज्जित होकर कहते हैं मैंने कुछ नहीं माँगा। तीसरी बार जाने को कहते हैं फिर लौट आते है। लौटने पर स्वामी राम कृष्ण कहते की मां नहीं चाहती कि तू नौकरी करें। वह कुछ और चाहती हैं। वह किसी और प्रकार की नौकरी देना चाहती है और वह नौकरी मैं तुमसे करवाऊंगा। वह विश्व की सेवा के रूप में नौकरी चाहती है। वह चाहती है कि तुम विश्व की नौकरी करो तुम्हारे परिवार का भरण पोषण में करूँगा। भगवान के जब दर्शन हो जाते हैं तो भीतर में कोई इच्छा नहीं रहती है। हम सब संसारी हैं। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके भीतर में इच्छायें न हो। महात्मा बुद्ध ने तो हमारे सभी दुःखो का कारण इच्छाएं हीं बताया हैं। इच्छा मृत्यु है। इच्छा ऐसा यज्ञ है ,

जिसमें अपनी जितनी आहुति डालते जाओ उसमे उतनी ही अग्नि प्रज्वलित होती जाती है । उसी प्रकार यह भी बढ़ती है । यह इच्छाएं और आशाएं कब खत्म होती है ? जब ईश्वर की प्राप्ति हो जाए ।

एक राजा है उसकी सात रानियां हैं । राजा यात्रा के लिए घर से निकलता है और प्रत्येक से पूछता है कि लौटती बार वह कौन सा उपहार उनके लिए लाये । छह रानियां तो अपनी इच्छा को बताती है । सबसे छोटी रानी कहती हैं, “मेरे मालिक ! मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सकुशल लौटे । बस यही मेरा उपहार है जब राजा वापिस आता है तो सब रानियों को इच्छानुसार सब को उपहार देता है । जितने बचते हैं वो सब छोटी रानी को दे देता है । तो रानियों को इर्ष्या हो जाती है । हालांकि जो उन्होंने माँगा था वो मिल गया फिर भी संतुष्ट नहीं हो पाई । कहती है कि देखिये यह अन्याय है । बड़ी रानियों को तो कुछ भी नहीं दिया और छोटी को सब कुछ दे दिया । मंत्री जी कहते हैं यह तो अन्याय है । वह राजा के पास जाते और उनसे यह बात कहते हैं, तो राजा कहता है रानियों से पूछे कि इन्होंने क्या क्या उपहार मंगवाए थे, और उनसे यह भी पूछिये कि वह वस्तुएँ मैं लाया कि नहीं । मंत्री रानियों से पूछता है और जब उसे यह मालूम हो जाता है कि सबके इच्छित उपहार राजा लाएं हैं तो रानियों से कहता है कि यह असंतोष क्यों ? रानियां कहती कि यह तो ठीक है हमने जो ममाँगा वह राजा लाये परंतु छोटी को अधिक क्यों दिया ? मंत्री ने कहा फिर आपकी इर्ष्या का क्या कारण है ? छोटी रानी ने कहा था कि मुझे कुछ नहीं चाहिए । मुझे आपकी कुशलता चाहिए । आप सकुशल लौट आए । वे लौट आए, मुझे सब कुछ मिल गया । इसी प्रकार जब ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं तब भीतर में कोई इच्छा या आशा नहीं रहती है, पूर्ण तृप्ति हो जाती है ।

हमारी संस्कृति में यह विचारधारा रही है कि जब तक हम गुरु धारण न करें, हमारा उद्धार नहीं होता । नारद जी के हृदय में कुछ उत्सुकता उत्पन्न हुई कि भगवान विष्णु से पूछे कि उनके गुरु कौन है ? भगवान के निकट रहते थे । उनसे बात करने में संकोच नहीं करते थे । भगवान से पूछते हैं कि आप सबसे कहते हैं कि गुरु धारण करना चाहिए । कृपा करके आप बतलायें कि आपके गुरु कौन हैं ? भगवान मौन रहें । परंतु आंखों से प्रेम के अश्रु बहने लगे । नारद जी चंचल प्रकृति के थे । उन्होंने पुनः पूछा हैं । “आप बताते क्यों नहीं ? संकोच क्यों करते हैं ? ”भगवान इतने प्रेम विभोर हो रहे थे कि चाहते हुए भी बोल नहीं पा रहे थे ।

बार बार नारद जी के कहने पर कि 'आपका गुरु कौन है' भगवान विष्णु उत्तर देने की कोशिश करते हैं । एक ही अक्षर उनके मुखारविन्द से निकला है -गो । वह कहना चाहते थे 'गोपी' । परन्तु 'गो' कह कर के मूर्छित हो गए । गोपियां उनकी गुरु है । सोचिये यह कैसी बात है कि भगवान को भी गुरु करना पड़ता है । गुरु एक आदर्श है, जीवन का । आप जो कुछ भी बनना चाहते हैं उस का आदर्श हीं गुरु है । यदि उस व्यक्ति की सहायता से आपको आदर्श की प्राप्ति हो सकती है तो आप उसको गुरु बना लेते हैं । भगवान प्रेम स्वरूप है । गोपियां प्रेम स्वरूप है । भगवान कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला करते हैं । प्रेमियों की रासलीला । घर बार के सब काम काज छोड़ कर कृष्ण के साथ रास लीला करती हैं । न तो किसी मर्यादा का पालन करती है, न संसार की लज्जा का ख्याल करती हैं । भगवान के चरणों में दौड़ी दौड़ी पहुंच जाती है । उनके प्राण भगवान हैं । उनका जीवन भगवान हैं । भगवान के लिए ही जीना है । उन्हें भगवान विष्णु 'गो' कहते हैं और मुर्छित हो जाते हैं । नारद जी ने भक्ति-सूत्र में नवधा-भक्ति का वर्णन किया है । अपने प्रियतम की याद में हर समय रहना । उनके गुणों को सराहना । संसार के वैभव की इच्छा न रखना , संसार के पदार्थों की इच्छा न रखना, यहाँ तक कि मुक्ति को भी तुच्छ समझना । सब कुछ ही प्रेममय हो यह प्रेम की साधना है । यह कांता भाव है । भक्ति की सिद्धि है । जो लोग भक्ति के रूप को नहीं समझते वो भगवान कृष्ण और राधा जी के प्रेम की आलोचना करते हैं । यहां तक कि पढ़े लिखे आदमी भी ऐसा करते हैं , ये मूर्खता है । मन के स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति कांता भाव को क्या समझे । कांता भाव है ईश्वर बन जाना । ईश्वर में लय हो जाना । संसार में जन्म धारण करके , प्रेम के लीला से शिक्षा देना ।

यह भक्ति कैसे की जाती है ? सूफियों में पहले फना होना, यानी गुरु में लय होना बताया जाता है । फना का दूसरा मतलब है , अपने आपको खत्म कर देना । गुरु या ईश्वर में लय कर देना । अपना अस्तित्व समाप्त कर के , मालिक का अस्तित्व मानना । जो अंतिम चरण नहीं है इसके आगे हैं बका । हिंदी में उसे कहते पुनर्जीवन । इसमें जाकर ईश्वर आज्ञा के अनुसार जीते जी पुनर्जन्म लेना । संसार के प्राणियों को अपनी इश्वरमय जीवन लीला से ईश्वर प्राप्ति का रास्ता बताना । ऐसे व्यक्ति को गुरु या संत कहते हैं । सामान्यत लोग यह समझते हैं कि एक तरफा लय हो गये । बूंद सागर में मिल गई, सागर रूप बन गई । उनका

जीवन यात्रा पूरी हो गई । अरविन्द जी इसको पूर्ण यात्रा नहीं मानते न हमारे यहां इसकी संस्कृति यह मानती है कि यह अंतिम चरण है । अरविन्द जी कहते हैं कि यह स्वार्थ है । व्यक्ति की अपनी ही मोक्ष , यह स्वार्थ है । किसी व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करना है तो उसे संसार का उद्धार करना होगा । इसलिए महापुरुष ईश्वर में लय होने के (फना होने के) बाद दूसरा जन्म लेते हैं, तो संसार की और सेवा करते हैं । यदि किसी गुरु ने अपनाया है तो यह गुरु ऋण आपको उतारना है । गुरु आप से पैसा नहीं मांगता । मान सम्मान वह नहीं मांगता । आपकी सेवा भी वह नहीं मांगता , उसका ऋण क्या है ? आप स्वयं पवित्र बने , निर्मल बने , हमारा आचार व्यवहार ऊँचा हो, हम संसार से मुक्त हो, निर्मल होकर हम कोशिश करें कि संसार के अन्य लोगों को भी निर्मल बनाए । जो आनंद हमें प्राप्त हुआ है , उस आनंद की प्रसादी को जितना भी हम आगे बढ़ाएंगे, बढ़ाएं और बांटे । इसका मतलब यह नहीं है कि हमें गुरु बनना है । सेवक बनकर ही तो सेवा की जा सकती है । जो वृक्ष है उसका आधार धरती के भीतर में जल है । छोटा सा पौधा बड़ा वृक्ष बन जाता है । फूल लगने लगते हैं । फल आते हैं , सुगंधी निकलती है, परंतु आधार तो केवल जल हीं हैं । वृक्ष का प्रत्येक भाग संसार की सेवा करता है, पत्तों से छाया मिलती है, पुष्प सुगंधी देते है । फल को जीव जंतु मनुष्य सेवन करते हैं । इसी प्रकार जीवन भी एक वृक्ष है । इस का आधार परम पिता परमात्मा है ,आपके भीतर में उस परमात्मा का अंश है जो और सबके भीतर भी है , उस अंश का विकास आपको करना है । उस आत्मा के जो गुण है वह अपनाने हैं , गुरु के जो गुण हैं उन्हें अपना कर उनका विकास करना है । अपना भी उद्धार करना है और संसार का भी उद्धार करना है । आपके संपर्क में जो भी व्यक्ति आये उसको प्रेरणा देनि है , अपने व्यवहार से, कि भी वह भी अपने आदर्श के प्रति विचारशील होवे । सोचे कि यह गुरु का ऋण है इसे मुझे उतारना है । यह जरूरी नहीं कि आप गुरु बने और शिष्य बनाये । तभी गुरु ऋण से मुक्त हो सकेंगे । आप गांवों में रहे या शहर में रहें , अपने विकासशील गुणों से, व्यवहार से संसार की सेवा करें । आपका जीवन सद्गुणों से भरा हो । संसार अज्ञान में हैं, अपने जीवन को आदर्शमय बनाकर इसे ज्ञान का प्रकाश दें ।

सत्संग की रहनी सहनी को संसार बड़ी गहराई से देखता है । वह देखता है कि इसके अंदर कोई कमी तो नहीं है । सत्संगियों की वास्विकता को देखता है । इसलिए हम सबको

सतर्क करना है । अपने जीवन को आदर्शमय बनाना है । त्रुटियां हममें हैं । उनकी चिंता मत करिये । प्रयास करिये कि अपने नाम पर धब्बा ना आने दें । आप सत्संगी कहे जाते हैं । लोग आपसे पूछेंगे कि आप किस सत्संग में जाते हैं ? आपके गुरु कौन है ? यदि आप का आचरण शुद्ध नहीं है, आपके व्यवहार ठीक नहीं हैं तो अपने को तो बदनाम करेंगे हीं साथ ही साथ गुरु और सत्संग की भी बदनामी होगी । इसलिए प्रत्येक सत्संगी को जागरूक रहना चाहिए, सतर्क रहना चाहिए । अपनी कमजोरियों का प्रति त्रुटियों के प्रति । उनको दूर करने का प्रयास करना चाहिए । यही साधन है । मन की कमजोरियों से ऊपर उठना महान तप है । इसलिए सत्संगी को वीर बनना पड़ता है, तपस्वी बनना पड़ता है । विचारशील बनना पड़ता है । यह कहना कि अमुक बुराई हमसे नहीं छुटती , कमजोरी है । कैसे नहीं छूटती, दृढ़ संकल्प करिये ।

जब हम तीर्थ पर जाते हैं तो वहां पर प्रसादी में बतासे आदि मिलते हैं , उनको घर ले आते हैं , घर वाले उस प्रसाद को पाकर बड़े प्रसन्न होते है । ठीक है, उसकी महत्ता है, गंगा की भी महत्ता है । परंतु सत्संग रूपी तीर्थ से जब आप स्नान करके लौटें और घर जाकर शांति आनंद का प्रवाह नहीं करें , तो आपका यहाँ आना बेकार है । आपका प्रसाद ले जाना , मिष्ठान ले जाना ठीक है । इसमें भी गुरु की कृपा है , परंतु वास्तविक प्रसादी यह है कि वहां जाकर दूसरों पर आपका इतना प्रभाव पड़ जाए कि आसपास के लोग दूर दूर के लोग आपके पास आए और पूछे कि यह शांति और आनंद आपको कैसे प्राप्त हुआ । आपके पास बैठने से उन्हें शांति व आनन्द की अनुभूति हो और सत्संग से यह प्रसादी लेकर आपको घर जाना है । भीतर में किसी के प्रति द्वेष की भावना, किसी के प्रति इर्ष्या की भावना, किसी के प्रति घृणा की भावना न हो । सेवा का भाव हो । प्रेम का भाव रखना । संतुलन का भाव हो । सेवा, बलिदान का भाव लेकर लौटे ।

प्रत्येक मनुष्य में लालसा रहती है कि प्रभु के दर्शन करें । हरिद्वार जाते हैं, गंगा जी में स्नान करने के लिए । कई लोग बनारस जाते हैं दर्शन के लिए । इस प्रकार अन्य तीर्थों तो पर जाते हैं , दर्शन करने के लिए । आप लोग क्यों दर्शन करते हैं ? मंदिरों, गुरुद्वारों , गिरजों के दर्शन का मतलब क्या है ? हरिद्वार में जाकर गंगा स्नान किया , हरकी पौढी में, वहां चाट आदि बिकती है, इसे खाया । इसी को समझते हैं कि दर्शन हो गया, यह दर्शन नहीं

है । दर्शन का महत्व है । पूज्य लाला जी महाराज (दादा गुरुदेव) अपने गुरुदेव के पास पहुंचे हैं । अभी बचपन ही हैं । पढ़ते हैं , स्कूल में । बारिश होती है, भीग गए हैं । अपने होने वाले गुरुदेव की कोठरी के पास से गुजरते हैं , वे कहते हैं कि नन्हे तुम भीग गए हों , कपड़े बदलकर आओ । मैं आग सुलगा रहा हूँ । आकर बैठ जाओ । लालाजी कपडे बदल कर वापिस आते हैं । अपने बिस्तर पर बैठा लेते हैं । अपनी रजाई उढा देते हैं । पूं० लाला जी महाराज ने लिखा है कि रजाई का ओढ़ना था कि मैं एक विचित्र प्रकाश में डूब गया । इस प्रकाश में आनंद ही आनंद था । शांति ही शांति थी ।

उसी प्रकार लाला जी महाराज कचहरी में खजाने में लिपिक थे । हमारे पूज्य गुरुदेव पिताजी की एक चेक पेश करने गए थे । लाला जी महाराज ने उनकी तरफ देखा । गुरु महाराज लिखते हैं, कहा भी करते थे, कि हमें एक बात समझ नहीं आई कि उनकी आंखों में ऐसा नूर (ज्योति) था जिसकी झलक पड़ते ही शरीर में एक बिजली सी दौड़ गई । हमने सोचा शायद यह महोदय कोई हिपनोटाइजर हैं । हमारा सारा शरीर रोमांचित था, प्रकाशित था ,दूसरे दिन रात्रि को स्वप्न में संतों ने दर्शन दिए हैं । आपके भीतर में उत्सुकता उत्पन्न हुई है, यह जानने के लिए कि इन स्वप्न का क्या अर्थ है । आपकी भेंट अपने भावी गुरुदेव पूज्य महात्मा रामचंद्र जी उर्फ लाला जी महाराज से होती है । हमारे गुरुदेव ने अपनी रात की स्वप्न की बात कही । पूज्य लाला जी महाराज ने कहा कि जो कुछ तुमने देखा वह स्वप्न नहीं था सत्य था । मैं तुम्हारी तलाश में था । तुम मेरी बिछड़ी हुई आत्मा हो । अब तुम यहाँ से नहीं जा सकते । उसी दिन से गुरु महाराज लाला जी महाराज के हो गए और लाला जी महाराज गुरु महाराज के हों गये । कोई भी विशेष साधन नहीं बताया उन्होंने । आपस में प्रेम था । एक ही बार के दर्शन करने से गुरु महाराज में परिवर्तन आ गया । हम लोग वर्षों से दर्शन कर रहे हैं । परमार्थ की सेवा में लग रहे हैं परन्तु हमारे जीवन में परिवर्तन क्यों नहीं आता ? कुछ कुछ लोग पीछे से तैयार होकर आते हैं । स्वामी विवेकानन्द जी स्वामी राम कृष्ण परमहंस के साथ आये । स्वामी जी छत पर चढ़कर पुकारा करते थे (नरेंद्र) तू कहाँ है ? आता क्यों नहीं ? विवेकानंद जी ब्रह्मसमाज में जाया करते थे । स्वामी राम कृष्ण उनके पीछे पीछे उनके जाया करते थे । विवेकानंद जी कहा करते थे कि यह तुम क्या करते हो , लोग तुम्हें क्या कहेंगे ? बाबा को उनसे एक विशेष प्रेम था ऐसे लोग पूर्व से ही आत्मिक प्रेम के संस्कार लेकर

यहां आते हैं और उनके साथ एक व दो विशेष लोग आते हैं । इसका मतलब यह नहीं कि दर्शनों का लाभ नहीं है । दर्शन करने वाले का दायित्व है कि जिसका उसने अपना मान लिया है, उनके चरणों में सब कुछ समर्पण कर दें और जिसकी सेवा में जाया जाये वह भी अपने शिष्य को सब कुछ अपनी अध्यात्मिकता की धन दौलत प्रदान कर दे । जहां ऐसा होता है उसी वक्त जिज्ञासु में एक विशेष परिवर्तन आता है ।

गुरु नानक साहब की सेवा में उनके होने वाले उतराधिकारी (गुरुं अंगद देव जी) गए हैं । वे नाम पूछते हैं कि आपका नाम क्या है ? उत्तर में कहते हैं मेरा नाम 'लेहना' है जिसको कुछ लेना होता है उसे पंजाबी में 'लेहना' कहते हैं इसको सुनकर नानक साहब कहते हैं कि मेरा काम है देना । यह पहली मुलाकात थी, जो कुछ गुरुदेव को देना था दे दिया और उस व्यक्ति ने एक ही क्षण में जो लेना था ले लिया ।

यह सब के साथ नहीं होता है ऐसी हस्तियां, ईश्वर इच्छा से, गुरु के साथ आती है । स्वामी रामकृष्ण परमहंस के साथ स्वामी विवेकानन्द जी आए , गुरु नानक देव जी के साथ गुरुंग देव जी आए । सामान्य व्यक्ति के लिए दर्शनों के क्या अर्थ है । गुरु महाराज ने गुरु शिष्य सम्वाद पुस्तक में इसे विस्तार से लिखा है । एक जिज्ञासु कबीर साहब की सेवा में आकर बैठा है । बैठे बैठे उसको तंद्रा आ गई, स्थिर हो गया । परन्तु आत्मा की अनुभूति न होने के कारण उस तंद्रा में उसे स्वप्न सा होता है । वह देखता है कि आसमानों की सैर कर रहा है , उड़ रहा है । बड़े विचित्र इष्टों के दर्शन है । आँखें खुली । कबीर साहब पूछते हैं कि क्या देखा ? वह सारा वृतांत बताता है , कबीर साहब कहते हैं जितना भी उपदेश दिया था उसमें कुछ भी नहीं समझा । यह जो कुछ भी तुमने देखा वह सब नश्वर है । यह आत्मा का रूप नहीं है , न दर्शन है । हमारे भाई भी विभूतियों और अनुभूतियों के पीछे पड़े रहते हैं । ये यही समझते हैं कि यही दर्शन है । या इन्ही दर्शनों के परिणाम स्वरूप इश्वर के दर्शन हो जाएंगे । वह जिज्ञासु दर्शनों को देख कर बडा प्रसन्न हुआ था । लेकिन कबीर साहब ने कहा कि यह सब भ्रम है । यह स्वप्न मात्र है । वास्तविकता नहीं है । वह जिज्ञासु पूछता है कि भगवान ! फिर दर्शन क्या है ? कबीर साहब समझाते हैं कि गुरु के या ईश्वर के गुणों को रोम रोम में बसा लेना यानि उसमें और ईश्वर में कोई अंतर न रहे यही दर्शन है ।

इसलिए कबीर साहब कहते हैं कि–“**तू तू करता तू भया, मुझमें रही न ‘मैं’ ”**

यानि तेरे बताए हुए रास्ते पर चलकर या तेरे दर्शन करते हुए तेरे जीवन का अनुकरण करते हुए , जैसे आप हैं गुरुदेव , जैसे ईश्वर हैं, वैसा मैं हूँ। मुझमें और आप में कोई अंतर नहीं है । मैं तो सब रूपों में आपके ही दर्शन करता हूँ । यह दर्शन है । परम पिता परमात्मा निराकार भी है साकार भी है । साकार की उपासना करते करतेहमें निराकार को जानना है । आप कितनी ही भक्ति की कर लीजिये परन्तु कोई भक्ति सफल नहीं होगी जब तक वह निराकार रूप में जाकर लय नहीं होगी । वह निर्गुण स्वरूप भी है, सगुन भी है। सद्गुणों को अर्थात अच्छे गुणों को धारण करके परमात्मा के चरणों में लय होना है । यही दर्शन है ।

जो लोग भीतर साधना करते हैं वह इसको समझ लें। भीतर में न तो शरीर का ध्यान रहे, न संकल्प विकल्प उठे, न बुद्धि की चतुराई हो, यानी तर्क वितर्क न हो । इसके बाद आनंद या शून्य भी हमारे हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं है। उसके आगे चलिए । यहां पर जब ईश्वर की कृपा होती है तब साधक आगे बढ़ पाता है नहीं तो , इसी शून्य में आके अपनी साधना को खत्म कर लेता है और समझता है कि सब यही है । एक आनंद की अवस्था और आती है उसमें कोई अपेक्षा या उपेक्षा नहीं होती। एक समान स्थिति रहती है । यह भी मोह है । अभी इसका भी त्याग करना है । जब तक आप यह समझते हैं कि मैं इसकी अनुभूति कर रहा हूँ इसका भी त्याग कर दीजिये। वह क्या स्थिति है इसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जाता । केवल अनुभूति की जा सकती है ।

किसी ने महात्मा बुद्ध से पूछा कि क्या आप आत्मा परमात्मा को मानते हैं। वे बोले कि मैं मैंने कब कहा कि मैं नहीं मानता। वह अनात्मिकता का अभ्यास बताया करते थे। हमारे यहाँ आत्मा को positive (अवश्य है) रूप में कहा जाता है । जैसे सूफी कहते हैं ‘तर्के मौला , तर्के तर्क’ । ईश्वर के विचार को भी छोडो, त्याग करने के विचार को भी त्याग करो । इसी प्रकार महात्मा बुद्ध कहते हैं कि आत्मा से भी आगे चलो, अनात्मिकता की ओर चलो । लोग समझते है कि महात्मा बुद्ध आत्मा को नहीं मानते। वह कहते हैं कि यदि आत्मा कोई चीज है तो इससे भी आगे चलो । संतुष्ट होकर नहीं रहना। संसार के प्रति इंसान को संतुष्ट

हो जाना चाहिए, परन्तु परमार्थ में संतुष्ट नहीं होना चाहिए । पता नहीं इसका रास्ता कितना लम्बा है , और कहाँ तक है ।

तो दर्शन का अर्थ है कि जो गुरु हैं परमात्मा है वैसे यदि हम बन जाते हैं , हमें समझना चाहिए कि हमें दर्शन का लाभ प्राप्त हो गया । रस्मी तौर पर दिखावे के तौर पर किसी महापुरुष के दर्शन करना या किसी तीर्थ का दर्शन करना इतना अधिक लाभप्रद नहीं । इतना लाभ तो जरूर है कि कुछ प्रेरणा मिलती है । परन्तु वास्तविक दर्शन का मतलब तो यह है कि जैसे कबीर साहब ने कहा है कि ईश्वर जैसा हो जाना । बूंद और सागर के जल में ही वही गुण है जो उसके जल के एक बूंद में है । आत्मा में भी वही गुण हैं जो परमात्मा में हैं लेकिन कब ?-- जब आत्मा पर से सब आवरण हट जाते हैं , संन्यासी बन जाते हैं , सिर मुंडा लेते हैं, यह प्रतीक है कि चित्त निर्मल हो गया । कोई इच्छा नहीं रही ,अग्नि का रंग ले लेते हैं । कपड़े भी गेरुवें रंग ले लेते हैं । व्यवहार भी अग्नि के समान हो जाता है । अग्नि सब को भस्म कर देती है ,सब चीजों को जला देती है, इसलिए संन्यासी भी अपने सब संस्कारों को, सभी इच्छाओं को, आशाओं को जलाकर तब संन्यासी बनता है । तब जाकर अधिकारी बनता है, ईश्वर दर्शन का ।

भाइयों को इस तरफ गंभीरता से ध्यान देना चाहिए । यह समझ लिया कि गुरु महाराज के दर्शन कर लिए, काफी हो गया । ऐसा नहीं है । नए भाई निराश ना हों । पुराने भाइयों से करबद्ध निवेदन है कि वह प्रयत्न करें, प्रयास करें शांति को पाने का । सारे जीवन को ईश्वरमय बना लें । जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे ईश्वर के गुण हममे नहीं आएंगे । भगवान राम हनुमान जी से पूछते हैं कि आप का स्वरूप क्या है ? हनुमान जी उत्तर देते हैं कि जहाँ तक शरीर है मेरी अवस्था सेवक की है, जब मेरी सूरति मन पर है तब आपका साथी हूँ, जब बुद्धि पर है तब ज्ञानी हूँ । जब आत्मा पर है तब मैं और आप एक ही है ।

हम सब एक ही परिवार के सदस्य हैं । सब एक प्रार्थना करते हैं परन्तु खूब समझना चाहिए कि , जैसे आग में सोना डाला जाता है, तो जितनी देर आग में रहता है , वह निखरा रहता है, उसी तरह साधक भी सोने की तरह मुसीबतों से निखरता है । जो दुःख सुख से घबरा जाता है वह सच्चा जिज्ञासु नहीं है ।

कोई किसी पार्टी को चाहता है कोई किसी पार्टी को चाहता है । मगर हमारा मन इसी में फंसा है । फिर सत्संग में आकर कहते हैं कि हमारे मन में विचार ही आते रहते हैं । संकल्प विकल्प तभी दूर होंगे जब विवेक और वैराग्य सिद्ध हो जाएगा । इसके साथ साथ तीव्र अनुराग परमात्मा के लिए , गुरु के लिए इष्ट के लिए पैदा होगा ।

मन की स्थिरता के लिए अमेरिका में दवाई की गोलियां लोगों ने खाई । हमारे यहां भी साधु भांग पीते हैं शराब पीते हैं कि अब मन में विचार नहीं आएंगे । यह कोई नई बात नहीं है जो अमेरिका में शुरू हुई है । परन्तु इससे परमात्मा को मिलने का नहीं । इससे कुछ नहीं होगा मैं जो दो तीन दिनों में निवेदन किया उसको आपको अपनाना हीं है , आज नहीं अपनाएंगे तो कल , अपनाना तो है । आप कोई भी साधना करते हैं, बच्चे हैं वो तो प्रमाद करते ही हैं बूढ़े भी प्रमाद करते हैं, जैसे कि मृत्यु आएगी ही नहीं । तो हमें त्याग वृत्ति रखनी चाहिए ईश्वर के साथ प्रेम करना है । अनुराग करना है । व्याकुल होना उसे पाने के लिए । यदि उसे पाना है तो मनुष्य को वैराग्य वृत्ति अपनानी हीं होगी । वैराग्य नहीं होगी तो ईश्वर के साथ प्रेम कैसे करेंगे । हो ही नहीं सकता । शुरू शुरू में कह देते हैं कि यहां आते रहिये । सब काम करिये । सत्संग में आईये , सब ठीक हो जाएगा । यह बच्चों को खिलौना देने वाली बात हैं । जब बच्चे जरा बड़े होते हैं ,स्कूल भेजा जाता है, जब और बड़े होते हैं, खेलकूद आदि सिखाए जाते हैं । आगे जाकर मिलिट्री भेजा जाता है । यह संसार भी एक संग्राम स्थल है । यहां आकर पता लगता है कि हमारी साधना का क्या स्तर है । तो विवेक वैराग्य को अपनाना चाहिए, वैराग्य के साथ अनुराग को भी अपनाना चाहिए । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मन धीरे धीरे स्थिर हो जाएगा संकल्प विकल्प खत्म होते चले जाएंगे । पवित्र मन ही स्थिर हो सकता है और अपवित्र मन किसी तकनीक विधि से तो स्थिर हो सकता है परन्तु इससे कोई लाभ नहीं । लोग सिद्धियां प्राप्त करने के लिए अपना मन एकाग्र करते हैं परंतु इससे क्या ईश्वर प्राप्ति होती है ? पाप करने के लिए ऐसी बात करने से क्या लाभ ? ऐसी एकाग्रता से क्या लाभ । इसी प्रकार कोइ साधक मन को एकाग्र करता है और उसके भीतर में यदि विकार है तो विकार बढ़ेंगे कम नहीं होंगे । पवित्रता पहली वस्तु है जो हमें करनी है, पवित्र मन निर्मल मन जब स्थिर होता है तो इसको शांति की अनुभूति होती है । शुरू

शुरू में प्रकाश की अनुभूति होती है । आत्मा की अनुभूति नहीं होती । जो आवरण है उनकी अनुभूति होती है ।

कई लोग यहीं आ कर संतुष्ट हो जाते हैं मान लेते हैं कि आत्मा के दर्शन हो गए परन्तु ऐसा नहीं है उससे आगे जाना है जहां समता होगी ,सुख होगा । कैसी भी परिस्थिति हो आपके मन की समता और आत्मा की समता एक जैसी हो । मन ने आत्मा के गुण ग्रहण कर लिए हों तब यह समता की अवस्था आती है ।

जैसा कि भगवान ने अर्जुन को समझाया है उस समता के बाद कहीं जाके आत्मा की परिधि में हम प्रवेश करते हैं । तो अभ्यास से वैराग्य को प्राप्त करना होगा । ऊपर से गुरू कृपा इश्वर की कृपा को ग्रहण करना होगा । दोनों अभ्यास करने होंगे । यदि हम दोनों अभ्यास करें , तीनों बंद लगा लें, चित्त को निर्मल करें, मन को स्थिर कर ले , ईश्वर की कृपा को ग्रहण करने के लिए अपनी झोली फैला लें, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि एक महीने में आपकी काफी प्रगति हो सकती है और परमात्मा चाहे तो आपको आत्मा की भी अनुभूति हो सकती है । अनेको साधन हैं, आपको जो अच्छा लगे अपनाइये इसमें कोई भी तर्क नहीं है, कौन सा अपनाएं ।

इसी को गुरुवाणी में लिखा है कि अक्षुण्य तृप्ति हो जाती है । नामी को भीतर में समा लिया । तभी जाके तृष्णाएं जितनी भी थी सभी समाप्त हो गई और इतनी तृप्ति है कि अब कोई चाह नहीं रही है । तो जब तक ईश्वर के वास्तव में दर्शन नहीं होते तब तक प्रत्येक व्यक्ति के भीतर इच्छाएं उठती रहती हैं । परन्तु लक्ष्य हम सब लोगों का होना चाहिए कि हमें दर्शन करने हैं । और उन दर्शनों के लिए हम सबको हर तरह का बलिदान देने के लिए तैयार रहना चाहिए । यह बलिदान क्या है ?

यदि सुबह समय मिला तो आपकी सेवा में निवेदन करूँगा ।

.(६)

निज कृपा के बिना गुरु कृपा नहीं होती

दिनांक २६-८-८०

बंगलौर से दिल्ली को लौटते समय पटना के श्री उमाकांत प्रसाद ने ट्रेन में कुछ भाई साहब डॉ० करतार सिंह जी से एक ऐसा प्रश्न किया जो बहुधा सभी सत्संगी भाई बहनों के मन में उठा करता है। उसका उत्तर संक्षेप में यहाँ लिखा जाता है।

प्रश्न-- शिष्य में जो अवगुण होते हैं वह शिष्य से स्वतः नहीं छूटते। यदि गुरु चाहे तो अपनी शक्ति से उसे छुड़ा सकता है। परन्तु गुरु ऐसा क्यों नहीं करते ?

उत्तर-- गुरु तो शिष्य के अवगुणों को छुड़ाना चाहता है परन्तु शिष्य अवरोध पैदा करता है। गुरु वह करना चाहता है जो शिष्य के हित में है। शिष्य निज कृपा (self help) नहीं करना चाहता। गुरुदेव ने बार बार कहा है और उनके प्रवचनों में स्थान स्थान पर आया है कि जब तक शिष्य निज कृपा नहीं करेगा तब तक गुरु कृपा अकेले काम नहीं करती।

चार प्रकार की कृपा होनी चाहिए। पहली निज कृपा यानी शिष्य में इस बात की प्रबल इच्छा हो कि मैं गुरु के कहने के अनुकूल चलूंगा। मैं अपने अवगुणों को छोड़ने की सच्चे दिल से कोशिश करूँगा , मैं गुरु के धाराप्रवाह में बहूँगा , कोई अवरोध पैदा नहीं करूँगा, दूसरी -- वातावरण अनुकूल हो। तीसरी -- गुरु कृपा हो। चौथी ईश्वर कृपा-- यदि पहले तीनों कृपा एक साथ होंगी तब इश्वर कृपा स्वतः आ जाएगी और तभी सच्चा कल्याण होगा।

यदि गुरु शिष्य से किसी बात के करने के लिए मना करता है और शिष्य उसमें अवरोध पैदा करता है यानी गुरु की बात न मान कर मनमानी करता है तो गुरु कृपा रुक जाती है। धारा प्रवाह में रुकावट पैदा हो जाती है और एक ऐसा पर्दा (दीवार) गुरु और शिष्य के बीच में पैदा हो जाता है कि चाहे दूसरी परदे हट जाए परंतु ऐसा पर्दा आसानी से नहीं हटता। इसलिए गुरु जैसा कहें वैसा मान लें, अपने मन को बीच में न लायें , तभी सब बुराइयां धीरे धीरे दूर होती जाएंगी। हम गुरु के धारा प्रवाह में बहना तो जाते नहीं है , उसके साथ सहयोग

तो करते नहीं हैं , और चाहते यही है कि हम कुछ न करें, सब कुछ गुरु ही कर लें । ऐसा संभव नहीं है । जब तक शिष्य निज कृपा नहीं करेगा तब तक गुरु कितनी भी कृपा करें काम नहीं बनेगा ।

हम दूसरों के अवगुण तो देखते हैं परंतु अपने भीतर देखें तो जो अवगुण आप दूसरों में देखते हैं वो अपने ही अंदर नजर आएंगे । उन्हें दूर करने के लिए निजीकृत और गुरुकृपा दोनों का सहारा लेना होगा ।

एक बार मैंने पूज्य गुरुदेव (पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) से विनोबा जी के आध्यात्मिक शिक्षा प्रणाली के विषय में कुछ निवेदन किया । मेरी बात मेरे मन के अनुकूल भले ही रही हो, परंतु संभवत गुरुदेव की धारा प्रवाह के अनुकूल न थी । गुरुदेव थोड़े नाराज से लगे । गुरु के कहने में चलने में ही शिष्य की भलाई है वह तो अपनी शक्ति सबको बराबर दे रहा है और उसी शक्ति से सब के मैल को धो डालना चाहता है , सब के अवगुणों को दूर कर देना चाहता है , परंतु शिष्य के भीतर जो अवरोध की भावना है , जो उसकी निज कृपा की कमी है वह ऐसा होने नहीं देती । अर्जुन की तरह दिन को रात कहे, चाहे वह मन के प्रतिकूल ही क्यों न हो । गुरु से सीखने आते हैं सिखाने नहीं ।

हाँ, कभी कभी गुरु के विशेष दया उमडती है जो ईश्वर की ओर से प्रेरित होती है । इसको ऐसे समझ लीजिये कि जैसे समुद्र में कभी कभी ज्वार आता है तो ऊंची ऊंची लहरें उठती है और किनारे के सारे कूड़े करकट को बहा ले जाती है , इसी प्रकार गुरु में यदा कदा ईश्वर प्रेम का जब कभी ज्वार उठता है, उसके ख्याल में उस समय जो भी सत्संगी में आ जाए या कोई प्रेमी-भक्त उसके निकट बैठा हो उसका सारा कूड़ा करकट उस इश्वर प्रेम के ज्वार में भ जाता है । इसमें भी एक बात जरुरी है कि ऐसे समय में जो भी प्रेमी-भक्त गुरु के निकट बैठा हो उसको बा-अदब (अनुशासित) व बा-होश (चौकन्ना) रहना चाहिए , तब तो उस गुरु प्रेम के ज्वार का कुछ लाभ पा सकेगा अन्यथा समुद्र के किनारे की चट्टानों की तरह उस पर भी प्रेम की ज्वार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । ज्वार के बाद भाटा आता है और सागर फिर अपनी मस्ती में लहराने लगता है । इसी तरह फकीर सागर की भांति उस विशेष

प्रेम उमंग के चले जाने के बाद सदा की भाँती ईश्वर प्रेम की अथाह मस्ती में स्थित हो जाता है ।

वातावरण की अनुकुलता से मतलब यह है कि प्रकृति माता के साथ सहयोग करो । जिस हाल में भगवान ने रखा है उसमें खुश रहो । मन में विक्षेप मत पैदा होने दो और अपने मन को सम अवस्था में रखने की कोशिश करो । तो पहले निज कृपा यानी शिष्य का स्वयं का पुरुषार्थ होना चाहिए । उसके साथ वातावरण की अनुकूलता होनी चाहिए यानि प्रकृति-माता से सहयोग करना चाहिए । तीसरे गुरु कृपा होनी चाहिए जो तब होती है जब उसके प्रेम की धारा प्रवाह में अवरोध न हो । शिष्य अपनी मनमानी न करें । जब यह तीनों कृपया एक साथ हो जाती है तो चौथी कृपा यानी ईश्वर कृपा आप से आप हो जाती हैं और शिष्या का कल्याण हो जाता है ।

राम संदेश, अक्टूबर १९८०

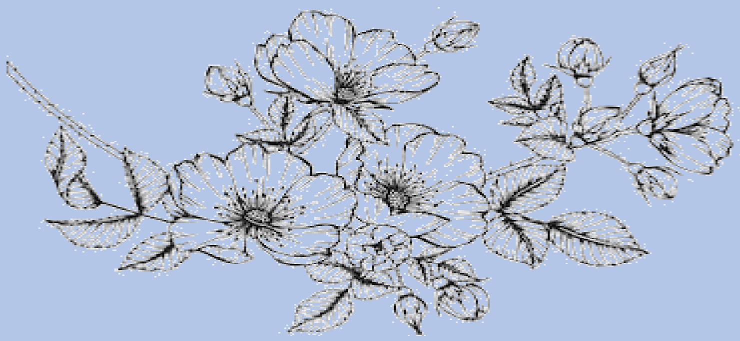

(७)

अपनी बुराइयों का चिंतन नहीं करना चाहिए

केवल कभी कभी स्व निरीक्षण करना चाहिए ।

चिंतन केवल अपने ईष्ट का करना चाहिए ।

मोतिहारी, दि० ८-१-१९८१,सायं ७ बजे

हठ नहीं करना चाहिए । हठधर्मी करना एक अवगुण हैं । परिणाम स्वरूप हमारे जीवन यात्रा में अवरोध होता है । कुछ लोग कहते हैं कि भजन आदि पढ़कर उपासना करने से ही भगवान मिलते हैं । कुछ लोग कहते हैं कि नहीं केवल मौन की साधना करने से ही आत्मा की अनुभूति होती है । यह एक प्रकार का तर्क है ।

एक कलाकार जहां मूर्तियां बनती है वहाँ रोज जाया करती थी । कितने ही सप्ताह उस कार्य क्षेत्र में जाती रही, उसकी आयु बितती गई । एक दिन उसने निर्णय किया कि वह स्वयं ही मूर्ति बना देगी, मूर्ति बनाने बैठी । काफी समय लगा, कई महीने लगे । बनाते समय वह अपने आपको इतना खो देती थी कि बाहर का होश भी नहीं रहता था । कुछ महीनों पश्चात मूर्ति तैयार हो गई । मूर्ति बड़ी सुन्दर थी । ऐसा मालूम होता था कि जिसकी मूर्ति बनाई है, प्रसन्नता बांट रहा है । वह कलाकार उस मूर्ति को देखकर इतनी प्रसन्न हुई कि उस मूर्ति की पूजा करने लगी । धीरे धीरे उस मूर्ति के साथ बातें करने लगी । इस तरह करते करते वह कलाकार स्वयं मूर्ति रूप हो गई । जिस देवी या देवता की मूर्ति बनाई थी उसके सारे गुण और उसकी शक्ल कलाकार के मन में बैठ गयी । यह उपासना प्रार्थना का अंत है । इसका बड़ा महत्व है । इसको भूलना नहीं चाहिए ।

साधना में जिस वक्त हम बैठे उस समय हमारे भीतर में परमात्मा के या परमात्मा के जिस रूप को हम मानते हैं, अपने इष्टदेव के, उसके खूब गुणगान करें । जितनी उसकी स्तूति कर सकते हैं करनी चाहिए । शुरू में तो सगुन रूप का ध्यान करते हैं वहीं सगुण रूप आगे चलकर निर्गुण हो जाता है । उनके स्वरूप को उनके गुणों को आंखों के द्वारा हृदय में उतारना

चाहिए । यह बिना उपासना के नहीं हो सकता । तत्पश्चात परमात्मा या गुरु की प्रसादी लेने के लिए मौन होकर बैठना चाहिए । छोटा सा एक उदाहरण है । बहनें सर्दियों में दही बिलोती हैं काफी बिलोंने के बाद थोड़ा सा गर्म जल डाल कर प्रतीक्षा करती हैं । तब मक्खन निकलता है यदि दही को निरंतर बिलौते जाइए तो मक्खन नहीं निकलेगा । बिलौना भी आवश्यक अंग है और गर्म पानी डालना या सर्दियों में ठंडा पानी डालना वह भी आवश्यक अंग है । दोनों का महत्व है । मौन में जिन गुणों को आपने साराहा । जिनका कीर्तन किया था, वे मक्खन बनकर, साकार होकर, आपके चित् में दिमाग में बसते हैं। वैसे भी बच्चों को सिखाते हैं–As you sow, so as you reap-- जैसे भी आप विचार करेंगे वैसे ही आप बनेंगे । तो दोनों को अपनाना चाहिए । जो पुराने अभ्यासी हैं । जिनको मौन में शांति मिलती है । उनके लिए थोड़ी सी ही प्रार्थना और उपासना काफी है । परन्तु जो नए भाई हैं उनके लिए प्रार्थना उपासना और जैसा वे बनना चाहते हैं वैसी भावना धारण करना चाहिए । जितना भी समय उसमें लगाना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता अनुसार इन दिनों में समन्वयता रखें । एक ही प्रकार की साधना या एक ही प्रकार का समय मौन का या उपासना का रखना चाहे तो यह नहीं चलेगा । दोनों की आवश्यकता है यह नहीं कि एक ही को किया जाए दूसरे को बिल्कुल न करें, बिलकुल मौन साधना ही करें और उपासना न करें यह भूल है । जब तक भीतर में आपका भाव नहीं बनेगा तब तक भक्ति सफल नहीं हो सकती और बिना भाव के आत्मा का प्रकाश जो आपके भीतर में वह भी विकसित नहीं हो सकता । भाव रास्ते की एक मंजिल है रास्ते का एक चरण है अपने चित् को निर्मल करना है यदि चित्त मलीन है तो आप कितनी प्रतीक्षा करते रहिये, आत्मा का प्रकाश दिखाई नहीं देगा । भीतर में चित्त को धोना है । वह निरंतर धुलता रहे भाव द्वारा, प्रेम द्वारा, ज्ञान द्वारा ।

इसलिए शुरू में जब साधना आरम्भ करते हैं तो जब तक मन शुद्ध न हो जाए तब तक भगवान की कीर्ति का गुणगान करते रहना चाहिए । जब देखें कि अब मन शांत हो गया है आगे बढ़ने के योग्य हो गया है तब मौन की साधना करें । लोग बाग शिकायत बहुत करते हैं कि पूजा में विचार बहुत आते हैं, विचार इसलिए आते हैं कि हमारा मन मलीन है, हमारी परमात्मा के प्रति श्रद्धा नहीं है, हम यह समझते नहीं हैं कि हम उनके चरणों में बैठे हैं और वे कितने महान है । उनके प्रति हृदय में भाव है ही नहीं और भय है ही नहीं । **भय उससे होता**

है जिसके प्रति हमारे मन में प्रेम होता है , सत्कार होता है । तो जब भी मन इधर उधर भागे तब चाहें तो आँख खोल कर उस उस वक्त कुछ पढ़ना शुरू कर दीजिये । भजन गाना शुरू कर दीजिये, जैसा भी आपको आता है । फिर आँखें बंद कर लीजिये और मौन साधना करिये । अगर तब भी मन नहीं ठहरता और तब आँखें खोल कर या बंद करके ईश्वर के चरणों में बैठकर खूब रोइए और विनती करिये कि हे प्रभु ! मेरी यह अवस्था है । मैं कैसे आपको मुंह दिखाऊं । मीरा जैसी महान भक्ति-रूप स्त्री कहती है कि मैं मैली चुनरिया और के आपके चरणों में कैसे आऊं । वह रोती है, तड़पती है, व्याकुल होती है । तो हमारे भीतर में व्याकुलता विरह क्यों न उत्पन्न हो ? विरह से मन स्थिर हो जाता है । व्याकुलता के बाद मन स्थिर हो जाता है । अब यह आत्मिक साधन करने के लिए या एकाग्रता के लिए योग्य हो जाता है ।

एक और भूल है लोग बाग मन की एकाग्रता को ही अंतिम साधन समझते हैं । ऐसा नहीं है साधन के चार अंग है एकाग्रता यानी concentration । एकाग्रता से मन स्थिर हो कर मन में शक्ति आती है । परन्तु यह तो एक चरण है बाकी तीन चरण और है, यात्रा लंबी है, यही नहीं ठहरना है । इसके बाद आता है contemplation -मनन, विचार । एकाग्रता किसके लिए कर रहे हैं । व्यक्ति या परमात्मा कौन है । हम कौन हैं ? चिन्तन करते हैं । वह सत्त स्वरूप है जिसका चिंतन कर रहे हैं । 'सत्त' के क्या अर्थ है ? 'सत्त' रूप के क्या अर्थ है ? चिन्तन करने से अपने इष्टदेव का स्वरूप गुण आपकी स्मृति में आकर धीरे धीरे आपका ही स्वरूप बन जाए । भक्ति में भी ऐसा किया जाता है । महापुरुषों की सेवा में बैठ जाओ, उनके उपदेशों सुनो, उन पर मनन करो । मनन कर के निध्यासन करना यानी उसको अपनाना और उनको व्यवहार में विकसित करना यह दूसरा अंग है । वास्तव में अब तीसरा अंग Meditation (समाधि) शुरू होता है जब मनन करके वैसे हो जाते हो तब समाधि का आनंद आता है । समाधि में क्या होता है । समाधि लगने वाला रहता ही नहीं, उसका मन बिलकुल शांत स्थिर हो जाता है । जब मन नहीं रहता तो किसका ध्यान करेंगे । जिसका ध्यान करते हैं उसका भी रूप नहीं रहता है । समाधि में आखें खुली रहे या बंद रहे ये सब ध्यान न देने की बातें हैं । यह उनके लिए है जो बुद्धि के स्थान पर है उसके लिए जो गिनती के अनुसार चलना चाहते हैं कि दो और दो चार होते हैं । यह भिन्न भिन्न प्रकार की पद्धति उन लोगों के लिए है जो बुद्धि को बीच में लाते हैं, पुस्तक ज्ञान पर ज्यादा निर्भर रहते हैं । या उन्हें सुनने का ज्यादा शौक है ।

प्रेम में न सुनने की जरूरत है न पढ़ने की जरूरत है । किस प्रकार प्रेम होता है वह प्रभु ही जानता है । भगवान कृष्ण की लीला कौन वर्णन कर सकता है । उनका प्रेम कौन वर्णन कर सकता है । महान कवियों की कविता खत्म हो जाती है गोपियों के प्रेम वर्णन करने में असमर्थ हैं । कोई एकाध मीरा निकलती है । एकाध सूरदास बनता है, जिसे ठोकर लगती है । सब नहीं बनते , सबके लिए तो जो कुछ भी मैंने निवेदन किया है उसका पालन करना ही हितकर है । अफीमचियों की तरह प्रेम की बात सुन कर अपने आप को गर्क (डुबो) नहीं देना चाहिए । धोबी का कुत्ता घर का न घाट का । हमें तो साधना करनी है । ना तो हम मीरा बाई की तरह हैं न सूरदास की तरह और न अन्य प्रेमी भक्त की तरह । हमें साधना करनी होगी । और साधना के भिन्न भिन्न प्रकार के जो अंग है, जो मैंने आपकी सेवा में रखें इन पर गौर करिये उनकी अपनाने की कोशिश करिये । जो लोग कहते हैं कि प्रगति नहीं होती उसका यही कारण है कि न तो ठीक तरह से उपासना करते हैं न प्रार्थना करते हैं, न रोते हैं, उसके अतिरिक्त न हम अपने जीवन की ओर ध्यान देते हैं । सारे दिन आँखों द्वारा, कान द्वारा, मुख द्वारा, गंदगी भीतर में डालते हैं और फिर कहते हैं कि साहब मन नहीं लगता, बुरे बुरे विचार आते हैं, बुरे विचार आते कहाँ से हैं ? वो तो भीतर में जमा है, वो तो निकलेंगे ही, उनको दबाने की जरूरत नहीं हैं, उन्हें निकलने दीजिये । परमात्मा की कृपा है कि वे निकलते हैं, चोर घर में आता है उनको बैठाते नहीं हैं, उसको तो दरवाजा खोलकर निकाल देना चाहिए । बुरे ख्याल न आए इसके लिए हम चित्त को मलीन न होने दें, निर्मल रखें । अपने सारे दिन की दिनचर्या को शुद्ध रखें । सद्गुणों को अपनाएं हमारा सद्व्यवहार हो सद्विचार हो । जब तक ऐसा नहीं करेंगे इसकी तरफ दृढता से नहीं बढ़ेंगे तब तक सफलता नहीं हो सकती । जीवन तो जैसा है वैसा ही रखते हैं, चाहते हैं कि साधना में बैठकर मन एकाग्र हो जाए तो यह कैसे हो सकता है ? सारे दिन अपने भीतर देखते रहना चाहिए कि चित्त मलिन न हो पाए । सारे दिन दुनिया की चिंता करते रहते हैं । जब प्रभु को अपना लिया कि वह हमारा सच्चा पिता है वो हमारी रक्षा करता है तो फिर हमें चिंता करने की क्या जरूरत है । अपनी त्रुटियों का बुराइयों का चिंतन करने से बुराइयां और अधिक दृढ हो जाती हैं । इसलिए कहते हैं कि केवल ईश्वर का नाम ही सुमिरन करो । तो जिनका चित्त निर्मल हो उसको सुमिरन करने की क्या आवश्यकता ? सिमरन करने का मतलब है कि परमात्मा के 'सत्' स्वरूप को और उसके

गुणों की स्मृति को धारण करो । केवल राम राम करने से कुछ नहीं होगा । राम के स्वरूप को, राम के गुणों को अपनाना होगा । कबीर साहब कहते हैं कि काठ की माला जपने का मतलब यह है कि जिसके नाम की माला जपते हैं उसके स्वरूप को बसाइए उसके गुणों का स्मरण अनुकरण करिये । ताकि जैसा आप सोचेंगे विचार करेंगे वैसे आप हो जाएंगे । जिस प्रकार आप नाम लेंगे वैसे आप हो जाएंगे । कहते हैं, " तू तू करता तो भया, मुझमें रही न 'मैं' " । 'तू' का (प्रभु का) जो रूप है, गुण है, उसको हमें याद रखना है तब हम 'तू' बनेंगे ।

महात्मा बुद्धकी साधना को हम कह देते हैं कि वह शून्य की साधना है । उसमें गुण नहीं है । सत्-चित्त-आनंद नहीं है परंतु हम तो ऐसी साधना भी नहीं करते । हमारी साधना तो शुन्यता से भी गिरी हुई है । दूसरे की तो हम प्रतिक्रिया कर लेते हैं परंतु हम स्वयं का निरिक्षण करके देखेगे कि हम क्या करते हैं ।

परमात्मा के गुणों को सराहिये इसी का नाम कीर्तन है, संगीत है, प्रार्थना है , उपासना है , जितना सराहेंगे उतना ही आपको लाभ होगा । केवल आँखें हीं बंद करेंगे तो क्या होगा । एक शून्य अवस्था आ जाएगी । यदि इसके परिणाम स्वरूप हमारे जीवन में क्रांति नहीं आती है , हमारे भीतर से क्रोध नहीं समाप्त होता है, दीनता नहीं आती है, प्रेम नहीं आता है, और हम किसी परिस्थिति में भयभीत नहीं होते हैं, भय से मुक्त हो जाते हैं तब तो सोचना चाहिए कि साधना के कुछ लाभ हुआ । यदि हमारे भीतर में वही विचार हैं, भय भी है, क्रोध भी है, अहंकार भी है, अधिक बोलते हैं, दूसरे की प्रतिक्रिया करते हैं बुरा भला भी कह देते हैं, तो हमने क्या हासिल किया । क्या साधना की ? भगवान शिव की मौन साधना है । संसार भले ही उन्हें विष पिलाये, गले में साँप डाल दे, बड़े जहरीले साँप होते हैं , परंतु वे क्या करते हैं ? प्रेम की गंगा, ज्ञान की गंगा से सब को स्नान कराते हैं । हम उन्हें उत्तेजना देते हैं, दुःख देते हैं, अपने पाप उनकी सेवा में रखते हैं और वे बदले में क्या करते हैं, हमें ज्ञान प्रदान करते हैं, नम्रता प्रदान करते हैं । हमें प्रेम देते हैं, हमें कोई गाली दे तो हम प्रतिक्रिया किया करते हैं, तो हमारी साधना कहां तक पहुंची है । कितनी प्रगति हुई , इसका स्वयं निरीक्षण परीक्षण करते रहना चाहिए ।

एक बात और, साधन के विषय में कह दूँ , अपनी बुराइयों का चिंतन नहीं करना चाहिए । कभी-कभी निरीक्षण करना चाहिए । महीने में एक बार या महीनें में दो बार । रोज नहीं करना चाहिए । जितना बुराइयों का चिंतन करेंगे उतनी ही वे बुराइयां चित्त में दृढ हो जाती हैं । चिन्तन केवल परमात्मा का करना चाहिए उसके गुणों का चिंतन करना चाहिए । मगर स्व-निरीक्षण जरूर करना चाहिए । जो जो कमी आप देखें उनको दूर करने की आप को कोशिश करें । उसके लिए चाहे पूजा करें चाहे, मौन साधना करें, गुरु से प्रेम करें-- जैसे भी बन सके उन कमी से निवृत्त होने की चेष्टा करनी चाहिए और दृढ़ संकल्प से अपनी बुराइयों को छोड़ देना चाहिए । हम कहते तो हैं कि साहब, यह छूटती नहीं है-- इसका क्या कारण है ? इश्वर प्रति प्रेम नहीं है । एक कन्या है-- बीस साल अपने माता पिता के घर में रहती है । जैसे ही उसकी शादी होती है वह अपनी ससुराल में जाती है तो अपने पहले घर को मानो भूल जाती है । ससुराल में ऐसे घुल मिल जाती है और वहां के संबंधियों से ऐसा संबंध पैदा कर लेती है जैसे कि वह सदा से वही रहती आई हो । ऐसा क्यों है ? क्योंकि उसे वहां रहना है, पतिदेव का प्रेम प्राप्त करना है । अपने मायके की सब बातें भुला देती है । आप ईश्वर से प्रेम करते हैं और उसके लिए अपनी बुराइयों को नहीं छोड़ सकते, कहते हैं कि साहब, यह छूटती नहीं है । आप में ईश्वर के प्रति प्रेम नहीं है । छोटी छोटी बातों को छोड़ने के लिए कहा जाता है तो कहते कि छूटती नहीं, आप छुडवा दीजिये । यह बहुत बड़ी कमजोरी है ईश्वर कुछ नहीं कहता । आपकी मर्जी है, जो चाहे करते रहिये । उसने आपको पूर्ण स्वतंत्रता दी है कर्म करने की । चाहे आप कदम आगे बढ़ाए चाहे पीछे । यह कहना कि ईश्वर छुड़वा लेगा, यह ईश्वर के प्रति श्रद्धा नहीं है बल्कि अश्रद्धा है ।

राम संदेश, मार्च १९८१

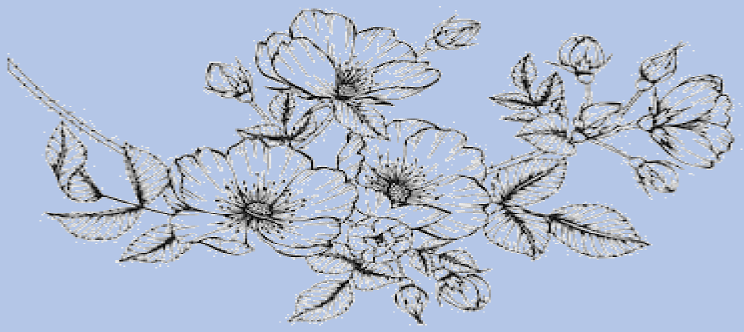

(८)

सर्व रोग की औषधि ‘ नाम ’

मुजफ्फरपुर, दि० ९-१-१९८१ (प्रातः ७ बजे)

‘ॐ राम, जय राम, जय जय राम’ - यह जो प्रार्थना है । इसको थोड़े शब्दों में समझ लीजिये । ओम शब्द की जितनी भी व्याख्या की जाए, उतनी कम है । इसी से सारी रचना हुई है । ‘ॐ राम’ परमात्मा सर्वव्यापक है । ‘राम’ जो सब में रमा हुआ है । प्रत्येक के मन में, तन में, रोम रोम में वह व्यापक है । ‘जयराम’ उस महान प्रभु की जो हमारा सच्चा पिता है, हम जय जय-कार ‘स्तुति’ करते हैं । ‘जय जय राम’ चौथा हिस्सा जो इस मंत्र का है वह तन-मन-धन से परमपिता परमात्मा के चरणों में अपने आप को पूर्णतया समर्पण करना है। जिन्होंने स्वामी रामदास जी का जीवन पढ़ा है वे जानते हैं, कि उन्होंने समर्पण के अर्थ केवल शाब्दिक या पुस्तक लिखने के लिए नहीं बतलाये । समर्पण किस प्रकार होता है वह उन्होंने अपने जीवन के व्यवहार से सिखाया है । उनके अनुसार एवं अन्य महापुरुषों के अनुसार समर्पण का अर्थ यह है कि अपनि गति को परमात्मा की गति से मिला देना है आप एक यंत्र बन जाए जैसे प्रभु चला वैसे ही यंत्र को चलने देना है, परन्तु केवल इतना कहने से ही तृप्ति नहीं होती या तो जीवन की साधना का अंतिम चरण ने साधना का भी श्री गणेश कहाँ से होता है ? ‘ईश्वर सर्वव्यापक है’ हम कहते भले ही रहें लेकिन जब तक उनकी अनुभूति न हो, हम इस बात को कैसे स्वीकार कर लें । सब महापुरुष अब तक यही कहते आए हैं कि परमात्मा की कृपा, परमात्मा की प्रेम-वृष्टि, प्रतिक्षण सब पर एक जैसी पड़ती है । हमें केवल इस वृष्टि को ग्रहण करने का ढंग सीखना है । वह बडा ही सरल ढंग है । सरल सुखासन पर बैठ जाइये या जैसे भी आपको आराम मिले । जमीन पर बैठे, कुर्सी में बैठे, खाट पर बैठे यह आपकी इच्छा है । शरीर ढीला हो और इस खयाल को लेकर बैठे कि ईश्वर की कृपा बरस रही है । अधिक से अधिक पांच मिनट लगेंगे कि आपको इस वृष्टि की अनुभूति होने लगेगी । दो चार दस मिनट तक यह अभ्यास आप करते रहें तो यह अनुभूति काफी मात्रा में होने लगेगी । यहाँ तक कि आपको अनुभव होगा कि आपका शरीर बाहर और भीतर से उस कृपा की वर्षा से कपड़े की

तरह भीग जाएगा । यह कोई अंधविश्वास की बात नहीं है । बच्चे से लेकर बूढ़े तक प्रत्येक व्यक्ति इसे कर सकता है । समर्पण का श्री गणेश यहीं से होता है । धीरे-धीरे परमात्मा की उपस्थिति का भान होने लगता है । जैसे ही हमें यह पता लग जाता है कि वह हमे देख रहा है, हम उसकी सेवा में बैठे , है तब हमारे भीतर में भय और भाव उत्पन्न होता है । भाव प्रेम और श्रद्धा को उत्पन्न करता है । भय इस प्रकार का नहीं जैसे बकरी शेर से डरती है । भय इस प्रकार की जैसे स्त्री जो कुछ कर्म करती है अपने पति को प्रसन्न करने के लिए करती हैं । और वह यह सोचती रहती है कि कोई बात मैं ऐसी न करूँ जिससे मेरा प्रति असंतुष्ट हों । इसी प्रकार ऐसा साधक जिसको अनुभूति होने लग जाती है वह कोई भी ऐसा कर्म नहीं करता जिसके कारण परमात्मा उससे असंतुष्ट या नाराज हो । बच्चे जब कक्षा में देखते हैं कि अध्यापक बैठे हैं तो वह शरारत करने में संकोच करते हैं । जिस वक्त हमें यह अनुभूति होने लगेगी परमात्मा हमारे पास है, वह हमें देख रहा है तब हम बुराई करने से संकोच करेंगे । इसलिए महापुरुष कहते हैं - “ जो तू सुख चाहे सदा, शरण राम के लेय । ”

दुनिया में जिस आदमी को देखो, जिस व्यक्ति को देखो, वह किसी न किसी कारण से दुखी है । महापुरुषों की सेवा में हमेशा हम लोग जाते आए हैं और अपनी तकलीफों को उनकी सेवा में कहते रहे हैं । यह कोई नई बात नहीं है । आजकल के लोग ही ऐसी बातें करते हैं, शुरू से ही ऐसा होता है । महापुरुषों ने सारे दुखों से निवृत होने की एक ही बात कही है - “सर्व रोग की औषधि ‘नाम’ ” । सब बीमारियों संसारिक व्याधियों की एक ही औषधि है - ईश्वर का नाम, ईश्वर का प्रेम, परमात्मा की शरण लेना यानी अपने आपको उनके चरण में पूर्ण रूप सेसमर्पण कर देना । जब हम ईश्वर से प्रेम करने लगते हैं तो प्रकृति की ओर से जो भी दुःख आएगा वहां हमें दुःखमय अनुभव नहीं होगा । वह ईश्वर की प्रसादी के रूप में अनुभव होगा । **दुःख सुख की मिलौनी का नाम ही संसार है परन्तु जब हम ईश्वर से प्रेम करने लग जाते हैं तो हमें ईश्वर की शक्ति मिल जाती है जिससे हमारा मन शुद्ध होने लगता है, बुद्धि में विवेक आ जाता है, आत्मा की समीपता आ जाती है, तब हम दुःख सुख को यह समझते हैं कि यह तो भगवान की रासलीला है** । यह तो अपेक्षित शब्द है वास्तव में तो दोनों में आनंद आता है । जो खिलाड़ी खेलते हैं वे यदि हार भी जाए फिर भी वे खुश रहते हैं और उनकी विजय हो जाए फिर भी वे प्रसन्नचित रहते हैं । दोनों टीमों के जो कैप्टन होते है, खेल खेलने से पहले

आपस में हाथ मिलाते हैं। खेल खत्म होता है तब भी हाथ मिलाते हैं। यह नहीं कि जो टीम हार जाती है वह भाग जाती हो- नहीं, वो प्रसन्नचित रहते हैं। वो कहते हैं कि यह तो खेल है इसमें बुरा मानने की क्या जरूरत है। कभी कोई हारता है कभी कोई जीतता है इसलिए कहते हैं life is a game (जीवन एक क्रीडा है)। play it well (इससे प्रेम से खेलो)।

तो राम की शरण लेने से ईश्वर के चरणों के समीप होने से हमे शारीरिक और मानसिक बल मिल जाता है। बौद्धिक बल यानि विवेक और वैराग्य उत्पन्न हो जाते हैं। और इस सबसे अधिक बल जो मिलता वह यह है कि आत्मा निर्लेप होने लगती है। तब ईश्वर की समीपता की अनुभूति होने लग जाती है। भीतर में कुछ शांति, कुछ आनंद सा अनुभव लगता है, विश्वास बढ़ता है इस अनुभूति को दृढ़ करने के लिए सच्चे संतों का सत्संग करना चाहिए। महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़नी चाहिए, गीता रामायण जैसे महान ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। जीवन को मर्यादा में ढालना चाहिए, ईश्वर का नाम लेने के साथ ईश्वर चिंतन भी करना चाहिए। आखिर हम कौन है? ईश्वर कौन है ? इस संसार में काहे के लिए आए हैं ? हमारा कर्तव्य क्या है ? शास्त्र कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त जितना भी भौतिक ज्ञान या जानकारी है वह अविद्या है। विद्या या ज्ञान वह है जो आत्मा और परमात्मा से सम्बन्ध रखता है। जिस व्यक्ति के मन में यह प्रश्न ही उठता वह इस संसार में किसलिए आया है ? वह कौन है ? यहाँ कर उसे क्या करना है ? ईश्वर के साथ उसका क्या संबंध है ? शास्त्र ऐसे व्यक्ति को मूर्ख समझते हैं और सोया हुआ समझते हैं। ईश्वर के समीप्यता की अनुभूति हो जाने पर हमारे भीतर में यह प्रश्न उठने शुरू हो जाते हैं -- "मैं कौन हूँ ?" यह पहला प्रश्न उठता है। शंकराचार्य जी कहते हैं कि जिस मनुष्य में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है कि "मैं कौन हूँ" उसे ज्ञान हुआ कि– "तत्वमसि"-- तुम तो वही हो जो ईश्वर हैं, Thou Art That-- तुम वही हो जो ईश्वर है। परन्तु अज्ञानवश हम भूले हुए हैं, हम यह समझते हैं कि हम तो यह शरीर ही है। अगर कोई पढा लिखा आदमी होगा तो ज्यादा से ज्यादा कहेगा–"मैं मन हूं-- जो सोचता हूँ वही करता हूँजो मेरी आदते है, मैं वही हूँ"। और इससे बढ़कर कोई विद्वान होगा तो वह कहेगा "मैं बुद्धि हूँ "। अधिकाँश लोग सोए हुए हैं। उनको यह मालूम ही नहीं कि मैं कौन हूँ। महान परमात्मा, अंशी जो हमारा आधार हैं, हम उसके अंश हैं , वे उसे नहीं समझ पाते। हम आत्मा है वह परमात्मा है, वह सागर है हम

एक बूंद है, मात्रा में भले ही अंतर है परन्तु गुण में एक जैसे हैं। परंतु हम पर आवरण है जब तक वे आवरण दूर होकर ईश्वर के गुण प्रकाशित नहीं होंगे तब तक भीतर में अशांति रहेगी और संसार के व्यवहार में दुखों का अंत होगा ही नहीं।

नाम का मतलब यही है कि " शरण राम की ले " ! शरण का मतलब यह है कि हमारा ईश्वर के साथ संबंध हो जाये, प्रेम हो जाये, हमारी आत्मा ईश्वर में लय हो जाए। नाम एक सीढी है - नामी (ईश्वर) तक पहुंचने की। कबीर साहब के कहने के मुताबिक यह काठ की माला नहीं है-- काठ की माला का जाप नहीं है। नाम वो सरेश है जैसे कि लकड़ी के दो टुकड़े टूट जाते हैं उनको जोड़ने के लिए सरेश लगा देते हैं। नाम वह है जो हमारी आत्मा को परमात्मा में मिला देता है। नाम वह साधन है, क्रिया है, जिसके द्वारा हमारी आत्मा परमात्मा में लय हो जाती और हमें निरंतर का ज्ञान हो जाता है , निरंतर की अनुभूति हो जाती है कि हम तो वही है जो हमारे पिता हैं। हजरत ईसा कहते हैं " I and my father are one" , "मैं और मेरे पिता एक ही है"। परंतु साथ ही हमे उपदेश देते हैं कि " Be perfect , as your father is perfect in The Haven "(जिस प्रकार प्रभाव परमात्मा पूर्ण है ऐ मनुष्य ! तू भी वैसा पूर्ण हो)" तब तू परमात्मा के समीप जा सकता है उससे पहले नहीं, उस पूर्णता तक पहुंचने के लिए ही नाम की सीढ़ी पकड़ते हैं। नाम एक ऐसी सीढी है जिसमें प्रार्थना भी आ जाती है, उपासना भी आ जाती हैं, गुरु से, ईश्वर से प्रेम भी आ जाता है, ज्ञान जाता है, योग भी आ जाता है। जितनी पद्धतियाँ हैं इस नाम में सब समा जाती है। नाम का मतलब है ईश्वर प्रेम या वह साधना जिसके द्वारा हम अपने आप को परमपिता परमात्मा में लय कर देते हैं। जब तक हम पूर्ण नहीं होते तब तक ईश्वर से दूर रहेंगे और जो दुःख सुख हमें भोगने हैं हम भोगेंगे। इसलिए इन सब बातों को जो औषधि है वह ईश्वर प्रेम है, नाम है।

हम पूर्ण कैसे हो ? मनुष्य का विकास हुआ है। लाखों सालों में उसके भीतर में सभ्यता का इतिहास सारा लिखा है। चित्त पर इस जन्म से लेकर पिछले जन्मों तक की छाया पड़ी हुई है। जब तक की छाया से हम निवृत नहीं होते तब तक हम पूर्ण नहीं हो सकते पहला साधन मैंने निवेदन किया है कि उसके समीप हो यह जो प्रेम की वृष्टि हम पर पड़ रही हैं उनकी अनुभूति करें। दूसरा यह कि जीवन को ही साधना बना दें। केवल ५ - १० मिनट

सुबह शाम बैठना काफी नहीं है । उससे केवल थोड़ी सी शक्ति अवश्य मिलती है । आत्मा बलवान होती है, परन्तु उससे साधना पूरी नहीं होती है । सारे दिन तो हम अपने भीतर के कूड़ा करकट इकट्ठा करते रहते है , आंखों द्वारा कानों द्वारा, अपनी वाणी द्वारा, मन के संकल्पों विकल्प द्वारा, चित् पर छाया डालते रहते हैं जो पुराने संस्कारों का कूड़ा जमा है उस पर और कूड़ा डालते रहते हैं और आशा करते हैं कि हमें सुख का जीवन प्राप्त हो जाये । इसलिए सारे जीवन को यानि प्रात: निंद्रा से जागने के समय से रात में सोने के समय तक सारा समय साधनामय बना दिया जाए । जो काम करें हाथ पांव से विचार द्वारा वाणी द्वारा उसमें ईश्वर की उपस्थिति का भान होता रहे ताकि हम alert (सचेत) रहें कि हमसे कोई बुराई न हो जाए । जो भी कर्म करें अपने सच्चे पिता की प्रसन्नता के लिए करें । कुछ दिन कठनाई होगी , आगे चलकर यह स्वभाव बन जाएगा ।

इस साधना द्वारा जो पुराने संस्कार हैं उन्हें धो डालें और आगे के लिए कोशिश करें कि नए संस्कार न बने इसके लिए भगवान कृष्ण ने हमारे ऊपर बडी कृपा की है जो अर्जुन को गीता के उपदेश दिया । उस उपदेश पर चलना चाहिए । यानि आसक्ति न हो कर्म के साथ और कर्मफल के साथ । हमारा स्वभाव बन गया है कि हमारे भीतर में आसक्ति है । कोई काम करते हैं तो सोचते हैं कि यह ठीक होगा कि नहीं , बच्चा पढेगा और पास होगा कि नहीं बच्चे की शादी होगी कि नहीं आदि । हर वक्त इन विचारों में डूबे रहते हैं । परमात्मा के ऊपर कुछ भरोसा ही नहीं रखते, जो कुछ कर्म करते हैं उसके साथ हमारा बंधन होता है । हमने किसी को पपचास रुपये दान में दिए तो हम चाहते हैं कि वह हमारे प्रति कृतज्ञता प्रकट कर । यदि कोई बड़ा अफसर निकलता है तो वह यह आशा रखता है कि जो भी २ - ३ आदमी उनके पास से गुजरे वे उसको सलाम करें । प्रत्येक व्यक्ति इच्छा रखता है और इच्छा की अग्नि में जलता रहता है । मनुष्य चाहता है कि सारे संसार का धन उसके पास आ जाए और आशा यह करता है कि संसार उस की इच्छा के अनुसार चले । दोनों बातें पूरी नहीं होती अत: निराशा होती है । इसलिए भगवान कहते कि किसी कर्म और कर्मफल के साथ बंधन मत रखो । यह बड़ा कठिन है, **अपने कर्म और कर्मफल के साथ बंधन न हो एवं दूसरा क्या करता हैं उसके कर्म के साथ भी बंधन न हो । हम दिन भर दूसरों की प्रतिक्रिया करते रहते हैं, अपनी नहीं करते हैं । सुबह से लेकर रात तक अखबार पढा करते हैं, खबरें पढ़ते और सारे दिन**

प्रतिक्रिया करते रहते हैं कि फलानी जगह यह हो गया, उन्होंने यह कर दिया, यह नहीं किया, आदि ऐसी बातें करते रहते है । यदि हमसे कोई दुर्व्यवहार करता है तो उसकी जो चोट दिल पर लगती है उससे हम इतने विचलित हो जाते हैं कि बहुत देर तक हम अपने को ठीक नहीं कर पाते । तो भगवान कहते हैं कि कर्मफल के साथ चिपकाव छोड़ दीजिये, अपने और दूसरे के कर्म और कर्मफल के साथ भी । धीरे धीरे इश्वर प्रेम प्रेम आता जाएगा, और पुराने संस्कार धुलते चले जायेंगे एवं नये आप बनने नहीं देंगे, भीतर में चित्त निर्मल होता चलाया जाएगा । जितना चित्त निर्मल होता चला जाएगा उतना ही आनंद, शांति, सुख आपको भीतर में अनुभव होगा । एक दिन ऐसा आ सकता है कि आप भीतर में गंगाजल की तरह बिल्कुल निर्मल हो जाए । वह असली स्थान है आनंद का, शांति का । इन सदविचारों को, सदगुणों को, अपनाने का अभ्यास करें । सदगति हो और बुरे कर्म न करें । ये सब बातें नाम में हीं आ जाती है । इसके साथ महापुरुषों का सत्संग करना, अच्छे अच्छे धार्मिक साहित्य को पढ़ना, महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ना चाहिए । थोड़ा सा अभ्यास है जो यदि हम लोग करें तो जो हम यह शिकायत करते हैं कि हमें दुख है, शारीरिक, परिवारिक, आर्थिक–यह बातें भीतर में उठेंगी ही नहीं । ऐसा व्यक्ति हमेशा सुख की अनुभूति ही करता है । कोई व्यक्ति व्यक्ति ऐसा नहीं जो भीतर में यह इच्छा न रखता हो कि मुझे कोई दुःख न हो, मुझे कोई बीमारी न हो, मेरी कभी मृत्यु न हो, मुझे कभी कोई कठिनाई न हो । सबके भीतर में यही चाह होती है । परन्तु इस चाह की पूर्ति के लिए एक ही रास्ता है और वह है 'ईश्वर-प्रेम' जो ईश्वर की हुजूरी से आरंभ होता है और अंत में हम उसी में लय हो कर वैसे ही हो जाते हैं जैसे कि ईश्वर है ।

दो व्यक्ति- यदि उनके स्वभाव नहीं मिलते हैं तो उनमें प्रेम नहीं हो सकता । कोशिश भी करेंगे तो असफल रहेंगे । प्रेम उन्हीं दो व्यक्तियों में होता है । जिनमें एक जैसे गुण होते हैं । इसलिए वे एक दूसरे से खिंचे (आकर्षित) रहते हैं । उसी प्रकार यदि हम में वही गुण हो जाते हैं जो ईश्वर में हैं तो हमारा योग (मिलन) हो जाएगा, निरंतर हम ईश्वर के साथ मिले रहेंगे । कहा जा सकता है कि यह कहने में आसान है, यह करने में कठिन है, यह ठीक है । परंतु महान सुख के लिए कुछ कठिनाई का सामना तो करना ही पड़ेगा, मेहनत तो करनी ही पड़ेगी । एक बच्चा बीए पास करने के लिए चौदह वर्ष मेहनत करता है, तो हम परमात्मा को पाने के लिए, जो सब सुखों का भंडार है जिसकी प्राप्ति के बाद कोई दुख हीं नहीं रहता, मृत्यु

भी नहीं आती है, हमें किसी कारण कोई कष्ट भी नहीं होता है -- तो क्या उस महान सुख की प्राप्ति के लिए हम थोड़ी सी कठिनाई को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं । यह हमारा प्रमाद है । जैसे हमें प्रातः बिस्तर में ही बेड टी (चाय) मिल जाती है वैसे ही परमात्मा भी हमें एक प्लेट पर रखा हुआ मिल जाए । इस आलस्य को प्रमाद को छोड़ना होगा । मेहनत करनी पड़ेगी । जो मेहनत करते हैं वह पाते भी है कि और सुखी भी हैं । जो मेहनत नहीं करते उनके पास सब कुछ होते हुए भी, वे भीतर में दुखी है ।

अब हम थोड़ी देर इस विचार या इस धारणा को लेकर मौन होकर बैठेंगे, कि हम प्रभु के चरण में बैठे हैं उसकी कृपा से हम पर बरस रही है । आप प्रभु के जिस रूप की भी पूजा करते हैं जैसे कोई भगवान शिव की पूजा करता है, कोई भगवान कृष्ण की पूजा करता है, कोई माँ की पूजा करता है, वह उसी ख्याल में बैठे कि वह अपने इष्टदेव के चरणों में बैठा है और दीन भाव से उनकी कृपा लिए भिक्षा मांगें । मन हीं मन जो आप ईश्वर का या अपने इष्ट देव का नाम लेते हैं, वो लेते रहे । भगवान हमें विश्वास दिलाते हैं कि " लोग जिस तरह से भी मुझे याद करेंगे उनकी साधना की याचना मेरे तक हीं पहुंचेगी । मैं सब रूपों में हूँ " इसलिए किसी को निराश नहीं होना चाहिए । जो कोई इस प्रकार की साधना करता है, उसको चाहिए कि उसमें पूरी श्रद्धा रखे और दृढ संकल्प के साथ परमात्मा के उस रूप को पकड़े । मंदिर जाते हैं तो ठीक है कोई बात नहीं देवी की पूजा करते हैं तो ठीक है, करते रहो । भगवान शिव को मानते हैं तो मानिये । भगवान कृष्ण मानते हैं तो उसकी पूजा करिये । गुरु को मानते हैं तो गुरु का बताया हुआ ध्यान करिये । आत्मा सब में है, परमात्मा सब में है । इसलिए हमारी पूजा, जिस रूप में भी हम करें, ईश्वर के चरणों तक पहुँचती है । धन्ना भक्त ने सालिगराम जी की पूजा, पत्थर के रूप में की, और उन्होने दर्शन दिए, खाना खाया, धन्ना भक्त के साथ बैठकर साकार रूप में । नाम देव की हाथों से दूध पिया । नदी के दूसरे किनारे से उठ कर रविदास जी की झोली में आ बिराजे । यानी भगवान की मूर्ति उसमे प्रकट हो गयी । इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए कि हम जो साधना कर रहे हैं क्या वह गलत तो नहीं है । उसमें पूर्ण विश्वास होना चाहिए । सब पूजा परमात्मा की है, किसी रूप को पकड़ लीजिये । सब उसी के रूप है ।

तो अब थोड़ी देर इस कृपा वृष्टि को ग्रहण करेंगे। सुखासन पर बैठ जाइए या जिस तरह में आपको सुख मिले और मन हीं मन इष्ट देव का जो नाम लेते हैं,वह लेते रहिये।

(९)

संसार में मोहग्रस्त होना दूसरे जन्म को निमंत्रण देना है

भबुआ, (बिहार) दि० ६-२-१९८१

कई भाई वह बहिने पूछती हैं कि चित् को निर्मल करने पर बल दिया जाता है। चित्त को कैसे निर्मल किया जाए ? जब यह चित्त निर्मल हो जाता है तो आत्मा का साक्षात्कार तुरंत हो जाता है। यह एक महान तप है जो सच्चे सच्चे जिज्ञासु हैं जिनके मुखारबिंद से यह शब्द निकलते हैं कि ऐ परमात्मा ! केवल एक आपका ख्याल रहे,अन्य सब बातों को भूल जाऊं , उन लोगों के लिए स्वामी रामदास जी ने कुछ बातें बताई है। अन्य व्यक्तियों को तो समय लगेगा , साधना की आवश्यकता है, परन्तु जो गंभीर व्यक्ति हैं जो चाहते हैं कि इसी जीवन काल में चित्त शुद्धि हो जाये उनको कुछ बलिदान करना होगा। स्वामी रामदास जी ने चार बातें कहीं है। तितिक्षा, उदासीनता, जगत प्रणाम एवं नाम।

(१) तितिक्षा-- योग साधना में तितिक्षा का मतलब यह लिया जाता है कि शरीर इस तरह बलवान हो जाए कि वह सर्दी गर्मी दोनों को सहन कर सके। परन्तु चित् शुद्धि के लिए उन्होंने यह भाव लिया है, कि यदि जीवन में दुख सुख आते हैं तो साधक को चाहिए कि दोनों को एक जैसा समझे। यदि कोई हमारा अपमान करता है तो उसको ईश्वर प्रसादी समझकर सहन करना चाहिए। अहंकार को छोड़ कर दीनता अपनानी चाहिए। दीन वही बन सकता है जो प्रतिकूल एवं अनुकूल परिस्थितियों में ईश्वर को भूलता नहीं और परिस्थितियों को दोनों रूप में ईश्वर की प्रसादी समझता है। यह तितिक्षा है साधन के लिए। संसार में रहते हुए मान अपमान तो होगा हीं , शरीर के रोग आएंगे, मानसिक उतेजना मिलेगी-- इन सब को ईश्वर प्रसादी समझ कर अपने भीतर व्यक्ति, संतुलन न खोये। भीतर में शांत अवस्था बनी रहे। ईश्वर के साथ लौ लगी रहे। केवल ईश्वर को छोड़कर हमें किसी के साथ लगाव न हो।

ईश्वर के साथ प्रेम हो यह तप है । जैसे प्रात: मैंने कहा था यह महान तप है । यह कहने में तो बड़ा सरल है किन्तु जब व्यवहार में हम तितीक्षा का अभ्यास करते हैं तो हम असफल होते हैं । पर पहला आदेश स्वामी रामदास जी का ऊंचे वासियों के लिए यही है । इससे किसी को घबराना नहीं चाहिए । लेकिन जो पुरानी अभ्यासी हैं, और गंभीर व्यक्ति है, और जो चाहते कि उनका जल्दी उद्धार हो जाये, उनके लिए स्वामी जी का परामर्श है कि वे तितीक्षा का अभ्यास करें । प्रत्येक परिस्थिति में चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल, भीतर की शांति और संतुलन बना रहे ।

(२) उदासीनता-- उनका दूसरा परामर्श है उदासीनता । संसार के भोगों को भोग लिया यहां के सुख देख लिए, यहां के संबंधी देख लिए, परिवार के जितने सदस्य है उनका हमारे साथ क्या व्यवहार है, वो सब देख लिया । संसार के अन्य व्यक्तियों का भी व्यवहार देख लिया, निंद्रा से जाग उठे कि इस संसार में अपना कोई नहीं है एवं संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका अस्तित्व हमेशा के लिए हो । सब व्यक्ति, सब वस्तुएं उनका अस्तित्व, क्षणभंगुर है , उनका स्वरूप परिवर्तनशील है, कोई भी वस्तु, कोई भी व्यक्ति, सब नाशवान है । सिवाय परमात्मा के कोई भी व्यक्ति या वस्तु या विचार अंतकाल तक नहीं रहता । आज पैसा है तो कल गरीबी आ जाती है । आज स्त्री पति में प्रेम है, कल दोनों में मामूली सी बात को लेकर झगड़ा हो जाता है । संसार जब ठुकराता है, जब दुःख आते हैं, उत्तेजना मिलती है, तब जिज्ञासु को वैराग होता है, कि संसार है क्या ? क्या खाना पीना यही संसार है ? जब संसार का सार पता लगता है तो उसके हृदय में उदासीनता आ जाती है । यह कैसा संसार है ? मैं किस की कीचड़ में फंसा हुआ हूँ ? मैं किस के दलदल में फंसा हुआ हूँ ? तब वह जिज्ञासु यहां से निकलने की कोशिश करता है और ईश्वर से लौ लगाता है । जब तक संसार में उदासीनता नहीं आती, इश्वर प्राप्ति का सच्चा भेद नहीं खुल सकता । प्राणी ईश्वर को चाहे, और संसार को भी चाहे, यह बात एक दूसरे के opposite (विपरीत) है । इसका मतलब यह नहीं कि यह संसार छोड़कर भाग जाना है या जंगलों में रहना है । जंगल में जाकर क्या करें । वहां भी जाकर भीतर में जो संस्कार है वो हमें कष्ट देता है । कहाँ भाग कर जाएं । जब सच्चा वैराग भीतर में उत्पन्न हो जाता है तो संसार में उदासीनता आ जाती है । उदासीनता का मतलब यह नहीं है कि हम किसी से लड़ते हैं झगड़ते है । किसी से बदले की भावना रखते

हैं । हमको समझ आ जाती है, ज्ञान आ जाता है कि संसार में कुछ सार नहीं है । यदि सार है तो केवल पर परमात्मा में है । उदासीनता के बाद ही ईश्वर के साथ प्रेम उत्पन्न होता है । अज्ञानी व्यक्ति संसार में फंसे रहते हैं । ठोकरे भी लगती है तो भी उनको मजा आता है । वो अज्ञान निंद्रा से जागृत नहीं होते । जब तक इस मोह से, अज्ञान के अंधेरे से, हमें उदासीनता नहीं होंगी । तब तक ईश्वर के साथ सच्चा प्रेम नहीं हो सकता । तब तक हमें इस बात का भी आभास नहीं हो सकता कि इन शब्दों के क्या अर्थ है “या रब तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे” । सच्चे जिज्ञासु के लिए अन्य कुछ नहीं है उसे मुक्ति की इच्छा नहीं है । उस परमात्मा की गति (रज़ा) में जिज्ञासु अपनी गति मिला देता है । इसी में उसको प्रसन्नता होती है । वो भगवान की रासलीला में सम्मिलित होकर प्रसन्नचित्त उसका आनंद लेता है । केवल तू ही रहे , बाहर में भी तू हो और मेरे भीतर भी तू ही हो । मेरा अस्तित्व प्रेम के उस महान सागर में लय हो जाये । वो ही वो रहे । कहने वालों के लिए तो व (द्वैत भाव) रहता हीं नहीं । केवल हम अज्ञानियों को समझाने के लिए महापुरुष ऐसा कहते हैं । “ या रब तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे” । जब तू ही तू रहता है तो जुबान बंद हो जाती है , कहने वाला कौन है ? महापुरुषों हम पर दया करके करुणा कर के मन के स्थान पर आकर हमें समझाने के प्रयास करते हैं । मन के स्थान पर आकर (यानी ऊंचे स्थान से नीचे आकर) हमारे हीं स्तर पर आकर हमें समझाने की कोशिश करते हैं, ये बड़ी दया है उनकी । इसका मतलब यह नहीं कि संसार में रह कर हम यहां के व्यवहार न करें । नहीं, संसार में भी रहेंगे, तो संसार की असलियत क्या है ? सार क्या है ? उसको समझ कर चलेंगे । मृत्यु आनी है इस शरीर को छूटना है ,इसके लिए तैयारी करनी होगी । जिसके भीतर उदासीनता पैदा हो गई है, वहीं मरने के लिए तैयार होता है जब तक इंसान जीते जी मरता नहीं, वह स्वतंत्र नहीं हो सकता है । उस मृत्यु के लिए तैयार रहना होगा ।

एक महापुरुष की सेवा में एक सच्चा जिज्ञासु गया और पूछा कि मुझे क्या साधना करनी चाहिए । उन्होंने कहा कि यदि तुम्हे यह पता लग जाए कि छह घंटे के बाद तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी तो तुम क्या करोगे ?   वो जिज्ञासु कुछ सरल तबियत का था, कहने लगा- महाराज मुझे तो समझ में नहीं आ रहा है, कि मैं क्या करूंगा ? उन्होंने कहा कि क्या तुमने किसी को मरते हुए व्यक्ति को देखा है , उसने कहा- “ हाँ महाराज, देखा है ” ।

“वह क्या करता है ? ”“वह सब से क्षमा मांगता है ” कि भाई मुझसे कोई गलती हो गई हो तो कोई भूल हो गई हो तो क्षमा करना “ और कोशिश करता है कि मन में भी उन सबको क्षमा कर दें जिन्होंने उनके प्रति कुछ अपकार किया हो” ।

उस महापुरुष ने उस जिज्ञासु को उपदेश दिया कि इस प्रकार का जीवन व्यतीत करो और याद रखो कि मौत होने वाली है । उस वक्त तुम्हारी स्थिति क्या होनी चाहिए ? किसी के साथ न राग हो न द्वेष हो । यदि तुमने किसी के साथ बुराई की है तो उससे क्षमा मांग लो, इन संस्कारों से मुक्त हो जाओ । यदि इन संस्कार में मुक्त नहीं होगे तो दूसरा जन्म अवश्य मिलेगा । किसी ने आपके साथ धोखा किया है , बुराई की तो उसे क्षमा कर दो । इस निर्मल अवस्था को लेकर राग द्वेष की अवस्था से मुक्त होने की अवस्था को लेकर कबीर साहब ने परमात्मा से निवेदन किया था कि प्रभु जैसी सफ़ेद चादर आपने दी थी वैसी की वैसी ही सफेद चादर आपके चरणों में अर्पण है । ये संतों की अवस्था होती है । वे मरे हुए (उपराम) होते हैं संसार से । उनकी कोई आसक्ति नहीं होती, कोई बंधन नहीं है किसी प्रकार का, उनका कोई शत्रु नहीं है और किसी के साथ आसक्ति नहीं है ।

आप सब ने जड़ भारत की कहानी सुनी होगी । कितनी महान अवस्था के ऋषि थे । एक मृग का बच्चा मरने की हालत में है, उसको वे बचा लेते हैं और उसका पालन पोषण करते है । आगे जाकर उस मृग के बच्चे के साथ इतना मोह हो जाता है कि उसी में वह आसक्त हो जाते हैं । उसी में वो आसक्त हो जाते हैं उसी में उनका मन फंस जाता है । यहाँ शैतान ने दया के रूप में आकर महर्षि को भरमाया । आप कहेंगे कि क्या महर्षि को उस प्राणी दया नहीं करनी चाहिए थी ?दया करनी चाहिए परंतु दया करके भूल जाना चाहिए उसमें फंसना नहीं चाहिए । उस मृग के बच्चें के साथ चिपकाव होने के कारण ऋषि जड़ भारत को तीन जन्म और लेने पड़े । क्या दिया की ? इस बात को बड़ी अच्छी तरह समझना चाहिए ।

सत्संग करते हैं और सत्संग में फंस गए तो छूटेंगे नहीं । ये ठीक है अच्छी बात है । मगर इसमें चिपकाव हो गया तो दूसरे जन्म में फिर यही काम करना पड़ेगा । यह मुक्ति नहीं हुई । स्वतंत्रता नहीं है । यह राग है, खिंचावट है, चिपकाव है । चिपकावा का परिणाम होता है, संस्कार । जब तक संस्कार हैं, जन्म मरण का चक्र चलता रहता है । बुरे संस्कार हैं तो बुरा

जन्म मिलेगा । अच्छे संस्कार हैं तो अच्छा जन्म मिलेगा, मगर जन्म जरुर मिलेगा । उदासीनता इसलिए करनी चाहिए कि मन जहाँ जहाँ फंसा हो वहाँ उसका चिपकाव न रहे , वहां से निकाल लेना चाहिए । अधिकाँश यह राग और द्वेष दोनों में फंसा रहता है । द्वेष में अधिक फंसता है इससे छूटना बड़ा कठिन है और भी बातें हैं जैसे आशाएं हैं, इच्छाएं हैं, घृणा है, निंदा है, अपने स्वभाव द्वारा आदत पड़ जाति है उसी में इंसान फंसा रहता है परंतु अधिकांश राग और द्वेष में फंसे है । तो उन महापुरुषों का जो उपदेश है मौत कि मौत छह घंटे में आने वाली है ये याद रखना है । उसके लिए जरूरी है कि जिससे हमारा राग (लगाव) है उन कांटों से अपना पल्ला छुड़ा लेना चाहिए । जहां द्वेष है , क्षमा कर देना चाहिए । बड़ा कठिन है । यदि हम यह नहीं करते तो सच्ची उदासीनता नहीं उत्पन्न होगी । मन में पकड़ रहेगी । ठीक है कि उदासीनता हो मगर उदासीनता के साथ चिपकाव न हो । इसका मतलब रूखापन नहीं । **उदासीनता का मतलब यह है कि संसार का सार समझ में आ गया है कि यहां रहने वाला कुछ भी नहीं, इसके साथ मोह ग्रस्त होना दूसरे जन्म को निमंत्रण देना है।**

(३)जगत प्रणाम-- तीसरा उपाय स्वामी रामदास जी का है ‘जगत प्रणाम’ । यह सारा जगत (जो भी दीखता) है ईश्वर का ही तो रूप है । सबको प्रणाम करना यानि इसका सम्मान करना यह समझ कर कि यह ईश्वर का रूप है । प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह गरीब है, या अनाथ है या धनवान, सबका एक जैसा सम्मान यानि सबके भीतर परमात्मा का दर्शन करना चाहिए । कई लोग सुबह उठकर तो गुरु के चरणों प्रणाम करते हैं, फिर सारे जगत को प्रणाम करते हैं, ऐसा करने से हमारी दृष्टि ईश्वरमय बन जाती है । जिस वक्त साधना सिद्धि का रुप पकड़ लेता है । सहज अवस्था होती है । कण कण में उसी के दर्शन होते हैं । फिर किसी के साथ वैर, विरोध, बुरी भावना या घृणा क्यों हो । हम तो सबकी हीं पूजा करेंगे, कथित शत्रुओं की भी पूजा करेंगे । यह आसानी से होता नहीं । जो बातें नहीं होती है उसी के लिए बार बार प्रयास करना है और उसी को साधना कहते हैं । लेकिन असली साधना यह है कि जहाँ मन फंसा हुआ है वहां से उसे हटाकर उसे शास्त्रों के नियमों के अनुसार गुरु के आदेश के अनुसार प्रकृति के नियमों के अनुसार बनाना है । कोशिश को साधना कहते हैं । **“मन के साथ सब सधे , सब साधे सब जाए”** जब तक मन नहीं सधता है इश्वर के दर्शन नहीं हो सकते । यह मेरा विश्वास है । कोई भले हीं इससे सहमत न हो कि मन जब तक ईश्वर के गुणों को

नहीं अपनाता यह मनुष्य ईश्वर रूप नहीं होता, तब तक साधना सिद्ध नहीं होती । तो स्वामी रामदास जी का परामर्श है कि सब प्राणियों में जगत के प्रत्येक कोने में स्थावर जंगम में, परमात्मा की उपस्थिति का भान करें । यही हमारे यहां की साधना है । ईश्वर कृपा जो हर वक्त बरसती रहती है , जिसे भगवती प्रसादी कहते हैं या फैज कहते हैं , ईसाई जिसको ग्रेस (Grace) कहते हैं । संतो मे इसको अमृत कहते हैं, इसको प्रतिक्षण पकड़ना चाहिए । इस प्रसाद को प्रतिक्षण ग्रहण करना चाहिए । इस कृपा की धार को पकड़ना हमारा स्वभाव बन जाएगा । सहज स्थिति हो जाएगी कि हम जहाँ बैठेंगे वहीं उस अमृतधारा को पकड़ेंगे । जैसे ही अमृत धारा हमारे शरीर में स्पंदन बना लेती है, हमें सब में ही ईश्वर के दर्शन होते हैं । जिस दिन शत्रु के पास बैठकर भी ईश्वर की अनुभूति होगी । तब हमारे भीतर में उसके प्रति घृणा नहीं होगी और जब तक किसी व्यक्ति के लिए हमारे मन में शत्रुता है तब तक ईश्वर तो दूर , भीतर में आपको आनंद नहीं मिल सकता, सुख नहीं मिल सकता है । देख लीजिये आप किसी के प्रति शत्रुता के भावना रखकर । संसार में रहकर करेंगे क्या ? जिसको ईश्वर दर्शन करने हैं उसको तो सब कुछ बलिदान करना होगा । और जिसको संसार में रहकर व्यवहार करना है , वाणिज्य करना है ,वह भले ही मर्यादा अनुसार , मित्र को मित्र समझे , शत्रु को शत्रु समझते हुए सतर्क रहे ।

संत कैसे देखतें हैं परमात्मा में सबको उसका उदाहरण देता हूँ । एक महापुरुष के घर में एक डाकू भिखारी का वेश बदल कर आया । कहने लगा, “रात बहुत हो गयी है , भूखा हूँ , आश्रय चाहिए” । महापुरुष ने कहा - “अच्छा रहिये, परन्तु घर में कुछ है नहीं, मैं बाहर से कुछ अन्न आदि लाता हूँ, आपको भोजन कराता हूँ ” । वे घर के बाहर गए हैं,उस डाकू ने महापुरुष की स्त्री का कत्ल किया है और उनके आभुषण आदि जो उन्हें पहन रखे थे वे लेकर भाग गया । रास्ते में वे महापुरुष मिले और उससे कहने लगे - “अरे , तुम कहाँ जा रहे हो ? ठहरो । “ उसके कपड़े खून से रंगे हुए थे । पता तो लग ही गया । “तू तो भूखा था । मैं ले आया हूँ सामग्री, भोजन बनाता हूँ, तू खा कर जा । बिना खाये नहीं जाने दूंगा” । चोर भय से काँप गया परन्तु वे महापुरुष उसको साथ ले गये । खाना खिलाया , तब कहा कि खाट के नीचे छिप जाइये, पुलिस आने वाली है । स्त्री को मार डाला है ये वह जानते हैं । उसको खाना

खिला रहे हैं और उसे पुलिस से छिपा रहे हैं । महा-कठिन है ऐसा करना परंतु उन महापुरुष को सबमे भगवान नजर आते हैं । भगवान की यह रास लीला है ।

हम बड़ी बड़ी ऊँची ऊँची कविताएं पढते हैं कि जो कुछ करता हैं भगवान ही करता है । जब हमारी परीक्षा होती है तो हम फेल हो जाते है । जब हमारी आशाओं के अनकुल बातें होती है तो हम कहते हैं कि परमात्मा बड़े कृपानिधि हैं , कितनी उनकी हमारे ऊपर कृपा है और जब बातें प्रतिकूल होती हैं हम इश्वर को भूल जाते हैं और जितना यह फिलासफी (दर्शन शास्त्र) है इसको भी भूल जाते हैं । जगत प्रणाम का मतलब यह है कि दुश्मन कोई रहे हीं न । सब में इश्वर के हीं दर्शन हों । **“बिसर गई सब तात पराई , जब ते साध संगत मोही पाई**” । गुरुदेव कह रहे हैं कि जब से मैं सत्संग में गया हूँ तब से भीतर में ज्ञान उत्पन्न हुआ है । यह भीतर के आंखें खुली हैं । अब मुझे कोई बेगाना पराया आता हीं नहीं है । **“ना कोई बैरी, ना हीं बेगाना”** अब तो कोई बैरी बेगाना दिखता ही नहीं है । सब मेरे ही रूप में दीखते हैं । इसके लिए तप करना पड़ता है केवल बातों से नहीं होता । कोशिश करनी चाहिए । महापुरुषों की बातों में कुछ वजन होता है । कम से कम कोशिश तो करो । सफलता असफलता प्रभु के हाथ में है ।

(४) नाम-- चौथा परामर्श स्वामी रामदास जी का है “नाम” । नाम का मतलब है ईश्वर से प्रेम करना, ईश्वर के जगत रूप की सेवा करना, हम उस प्रेम रूपी सीढ़ी को अपना कर या नाव को (गुरु रूप में) अपनाकर भवसागर को पार होना है । नाम वो साधन है जिसके द्वारा अपनी चित्त को निर्मल करते हैं, संस्कारों से मुक्त होते है एवं आत्मा को परमात्मा में लय कर देते है । नाम में ही सब साधना आ जाते है । अपने आप को योगी बनाना, ये भी नाम का ही फल है । अपने आपको ईश्वर के चरणों में रज बना देना, अपने आप को खत्म कर देना ये भी नाम का हीं फल है । नाम केवल राम राम कहने से नहीं होता है । कबीर के शब्दों में काठ की माला को लेकर जपने से नहीं होता है । मन की माला को जपो । मन की माला से क्या मतलब है ? मन को शुद्ध करना है पवित्र करना है संस्कारों से मुक्त करना है । अज्ञान से और मोह से मुक्त करना है । मन की दीवार को तोड़ना है एवं आत्मा परमात्मा के योग के लिए योग साधन करना है । बीच में दीवार हमारे मन की है । नाम का मतलब है जिस तरीके से भी हो हमारा ईश्वर से प्यार हो जाये । कोई राधा का नाम लेकर उसको पुकारता

हसी कोई कृष्ण का नाम लेकर उसको पुकारता है कोई शिव का नाम लेकर पुकारता है कोई ॐ कार नाम लेकर पुकारता है। ये सब सहीं है परन्तु नाम के साथ भाव होना चाहिए। यदि नाम के साथ भाव नहीं है, प्रीतम से मिलने की व्याकुलता नही है , नाम के साथ अधिकारी बनने की चेष्टा नहीं है, सिर्फ रस्मी तौर पर वह सुबह पांच दस मिनट बैठ लीये और सोच लिया कि बस हमने तो नाम ले लिया, इससे कुछ नहीं होता। नाम लेते लेते अपने अस्तित्व को खत्म कर दे केवल परमात्मा ही परमात्मा रहे। ये सब नाम से ही आ जाता है। मन को एकाग्र करना ये भी नाम में आ जाता है। गुरु का या ईश्वर का ध्यान करना यह भी नाम में ही आ जाता है। भीतर का शब्द सुनना यह भी नाम में आ जाता है। मन को पवित्र करने के साधनों को अपनाना नाम में आ जाता है। सत्संग में जाना यह भी नाम में आ जाता है। सब की सेवा करना यह भी नाम में आ जाता है। नाम एक ऐसा विशाल साधन है जिसमे छोटे छोटे सब साधन लय हो जाते हैं। अंत में नाम एक प्रेम रह जाता है या आकर्षण रह जाता है। भगवान की बासुरी की तान का वो आकर्षण जिनको सुनकर गोपिया घर बार छोड़ कर भाग खड़ी होती है, ये प्रेम है, प्रेम का संबंध है। मुरली की आवाज नहीं है, भगवान की पुकार, भगवान की स्मृति है। भगवान तो निरंतर ही मुरली बजा रहे है। यही हमारे कान नहीं सुनते हैं, तो दोष किसका है ? हमारे भीतर में प्रेम में है ही नहीं, व्याकुलता है हीं नहीं। ईश्वर के प्रति उदासीनता है इसलिए हमारी मुरली की ध्वनी की तरफ खिंचावट होती हीं नहीं है। Magnet चुम्बक के पास लोहा रखा जाता है तो वह स्वयं खिंच जाता है। अन्य धातुएं रखी जाती है तो वो नहीं खिंचती। हमारी भी यही स्थिती है। परमात्मा तो बुला रहे हैं, भगवान तो बुला रहे हैं, परंतु हम उस धातु के बने जिसमें खिचने का आकर्षण नहीं है ,क्यों नहीं खिंच जाते ? क्योंकि चित्त निर्मल नहीं है।

स्वामी रामदासी के नाम के ऊपर बहुत कुछ लिखा है। अन्य महापुरुषों के नाम के भी ऊपर बहुत कुछ लिखा है यहां तक कहा गया है कि नाम और नामी में कोई अंतर नहीं है और ये सत्य है। नाम में समर्पण है। **“मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तुज्झ** ” अपनापन अपने मन की चिपकाओ इन सब को छोड़ना है। यहां तक कि शरीर भी अपना नहीं है। आगे चलकर यह मन भी तो अपना नहीं बनता। सार समजहिये , इस संसार में है क्या ? इस हाड़ मांस पुतले में है क्या ? केवल गंदगी है। वो गंदगी जब आप संडास में जाते हैं, तो नाक

पर रुमाल रख लेते है । अच्छे कपडे पहन कर हम अपने आपको सजा कर रखते हैं, आखिर है क्या यह ? जब तक शरीर है तभी तक आप ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधन कर सकते हैं । जिस वक्त यह शरीर छूट जाता है आप असमर्थ हो जाते हैं, ईश्वर के मिलने की कोई साधना नहीं हो सकती मोक्ष प्राप्ति के लिए देवताओं को भी मनुष्य चोला धारण करना पड़ता है । ईश्वर की महान कृपा है की हमको मनुष्य चोला मिला है । इसमें दोनों चीजें हैं , गंदगी भी है और आत्मा भी है । गंदगी से उदासीन होना है और ईश्वर या आत्मा से प्रेम करना है ।

ये चार बातें रामदास जी की है ,और बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है यदि हम कोशिश करें तो । वे नाम पर लिखगये हैं कि भोजन छूट जाए, अन्य बातें सब छुट जाएँ परन्तु ईश्वर की स्मृति न छूटे । शुरू शुरू में उन्होंने वाचक नाम दिया है । ऊँचे ऊँचे स्वर से "ॐ राम, जय राम, जय जय राम" उच्चारण करो । बहुत सारे लोग यही समझते हैं कि केवल यही नाम लेते रहें - नहीं । आगे चलकर उन्होंने जब इस नाम को अपने शरीर में, रोम रोम में, बसा लिया, भीतर में प्रेम उत्पन्न हो गया, ईश्वर में श्रद्धा और विश्वास दृढ हो गये तब उन्होंने भीतर की साधना की है । ये भी नाम है । महर्षि रमन ने इसको स्पष्ट शब्दों में कहा है । उन्होंने बतलाया है कि शरीर भी मृतक हो जाता है मन स्थिर हो जाता है,और श्वास और प्रश्वास की गति भी धीमी हो जाती है ।

इसको एक मुसलमान सूफी ने लिखा है–शरीर तनाव मुक्त हो, (relaxation of the body) मन स्थिर हो (relaxation of the mind) भीतर में कोई भी प्रलाप न हो, कोई भावना भीतर में न रहे (Relaxation of the feeling) । ये तैयारी है । इसके बाद ईश्वर के प्रेम की प्रतीक्षा में साधक बैठ जाए । ये आसन है कि किस प्रकार बैठना चाहिए । ये सब नाम ही अंदर आते हैं । तो सबको समझना चाहिए कि शरीर स्वस्थ और सुन्दर हो, रोगी न हो । मन भी स्वस्थ हो, संकल्प , विकल्प से मुक्त हों, कोई भीतर में तनाव न हो , कोई भाव ना हो , कोई आशा न हो, कोई इच्छा न हो कर्तापन भोक्तापन का भाव न हो । केवल के हाथ में पत्थर जैसे अपने आप को समर्पण कर देता है , कलाकार उस पत्थर से एक बड़ी सुंदर मूर्ति बनाता है । उसी प्रकार हमें अपने सर्वस्व भगवान के हाथों में , चरणों में , समर्पण कर देना चाहि । उस महान कलाकार को हमें अपनी गढत करने का अवसर देना चाहिए । " हे प्रभु ! तेरी इच्छा पूर्ण हो । जैसी मूर्ति आप हमारी बनाना चाहते हैं बना डालिए , स्वीकार है

। जब पूर्णतया समर्पण करते हैं (अभ्यासी करके देखें) तो कितने आनंद की अनुभूति होती है । भीतर को तनाव छोड़ना होगा । सबसे कठिन बात यही है । महात्मा बुद्ध भी कहते हैं–"हमारा जीवन आशाओं और इच्छाओ की अग्नि में जलता रहता है" । उन्होंने तो यहां तक कहा है कि हमारी आंतरिक बीमारियों का कारण,हमारे सब दुखों का कारण 'इच्छा' है । हमारे यहां इच्छाओं से मुक्त होने के लिए संतोष का साधन करते हैं । प्रत्येक परिस्थिति में ईश्वर का धन्यवाद करते हैं, एवं जिस हाल में वह परमात्मा रखे उसी में संतुष्ट रहते हैं । ऐसा करने से साधक इच्छाओं और आशाओं से मुक्त हो सकता है । जब तक की इच्छाएं, आशाएं हैं तब तक भीतर में तनाव बना रहेगा । जब साधना में बैठे तो संसार को भूल जाना चाहिए ।

स्वामी रामदास ने इन चारों बातों में गीता का सार ले लिया है । कोई भी ग्रन्थ उठाकर देख लीजिए , चित्त को निर्मल करना अत्यावश्यक बताया गया है । जब तक निर्मल नहीं होता तब तक साधना का रस और आनंद आ ही नहीं आ सकता ।जैसे, यदि क्रोध आया हुआ हो और आप के सामने स्वादिष्ट भोजन रखा जाए तो स्वादिष्ट भोजन में आनंद ही नहीं आता ।आप उसे खाना नहीं चाहते । इसी प्रकार यदि भीतर में क्रोधाग्नि जल रही है घृणा है, द्वेष है, शत्रुता है, बदले की भावना है और आप चाहे कि आपको भीतर में सुख मिल, आनन्द मिले -असम्भव है । आपके भीतर में ईश्वर के प्रति विश्वास नहीं भय है सुरक्षित अनुभव नहीं करते हैं ।आप भयभीत रहते हैं । भीतर में चाह है कि ये काम इस प्रकार हो जाए , मेरी इच्छा के अनुसार हो जाये मेरी आशा के अनुसार हो जाए । जब साधना में बैठते हैं तो इसी की रट लगाते हैं । तो सोचिए आपको साधना में आनंद कैसे जा सकता है ? इन सब बातों से ही भीतर में तनाव उत्पन्न होता है । साधना करते करते यदि यह तनाव खत्म नहीं होता है तो साधना में कहीं कमजोरी है । पहली सफलता जो साधना में मिलनी चाहिए वो यह है कि भीतर में तनाव न रहे । जिसके भीतर में तनाव है, उसका शरीर भी रोगी रहेगा मन भी रोगी रहेगा । उसके भीतर में क्रोध उत्पन्न होता है और यह क्रोध और तनाव डॉक्टर लोग तो जानते ही हैं स्नायु रोग (nervous disease) के कारण हैं । सत्संगी को तो तनाव से दूर रहना चाहिए । गुरुदेव कहा करते थे कि सामान्य व्यक्ति पर तो बुराई उतना प्रभाव नहीं डालती , परन्तु जिनके चादर सफेद है, सतोगुणी हैं , उस पर यदि काले रंग का कोई दाग पड़ जाता है तो वह दूर से दिखता है । सत्संगी पर बुराई का जल्दी प्रभाव पड़ता है

इसलिए सरसंगी को सतर्क रहना चाहिए । गुरु के आदेश हम सुन लेते हैं परन्तु उसके ऊपर हम मनन नहीं करते ।

गुरदेव आप सब का कल्याण करें ।

(१०)

सच्ची भावना हो

जमशेदपुर, दि० २६-११-१९८१ सायं

हमें प्रतिक्षण ईश्वर का आशीर्वाद चाहिए जैसे ही आपने उसके चरणों में ध्यान लगाया उसकी कृपा वृष्टि की अनुभूति होने लगती है । यदि किसी प्रार्थना को हृदय से करने के पश्चात ध्यान करेंगे तो इस कृपा प्रसादी की अधिक प्राप्ति होगी । जब भी मन उदास हो अथवा चित्त क्षुब्ध हो गया हो या किसी के किसी कर्म से या कुछ करने से दिल पर आघात हुआ हो तो उस वक्त बच्चे की तरह प्रभु के चरणों में रोने की कोशिश करनी चाहिए । इससे सच्चे विचार सच्ची भावना प्रभु के सम्मुख प्रकट हो जाती है । बच्चा जिस प्रकार माँ को करुण हो कर पुकारता है । उसी तरह प्रभु को पुकारना चाहिए । सत्संग में बैठते समय मन का भावना मुक होकर प्रकट करना चाहिए । एकांत में बैठे हो तो यह समझिये की गुरुदेव आप के पास बैठे हैं और आप उनके सामने बैठे है । जिस प्रकार एक भूखा भिखारी जिसने चार पाँच दिन से भोजन नहीं किया हो किस तरह से गिडगिडा के भोजन मांगता है उस तरह से हम भी उसकी कृपा के भूखे, उस भिखारी की तरह, आपकी इच्छा हो जाए तो वह (परमात्मा) देता है । हमें गुरु से उसी प्रकार मांगना चाहिए जिस प्रकार भूखा भिखारी मांगता है ।

इसके साथ साथ एक बात और भी निवेदन कर दूँ कि हम प्रभु की प्रसन्नता इसमें मानते हैं कि हमारा शरीर स्वस्थ हो । हमारे पास खूब पैसा हो चाहे ब्लैक का (काला धन) हो घुस की कमाई से आया हो, उसको हम अच्छा समझते हैं । संसार में सम्मान हो, कोई हमारी आशा विरुद्ध न जाए । प्रत्येक व्यक्ति जैसा हम चाहे वैसा ही करें । इन बातों को हम समझते हैं कि ईश्वर कृपा है, सुख है । जब यह बातें होती है तो हम यह कहते हैं कि ईश्वर की बड़ी

कृपा है । यदि ये शरीर अस्वस्थ हो जाए , आर्थिक कठिनाई आ जाये , लोग हमारी मलामत (अपमान) करें यानि हम तो उनकी सेवा करें और लोग उसके बदले में हमें भली-बुरी कहें और हमारे मुख से यह निकले की प्रभु हमारे प्रति अन्याय करते हैं तो यह ठीक नहीं है । भक्त तो इन बातों से, इन मानसिक सुख दुखों से उपर है । न तो वह दुखों की प्रवाह करता है न चिंता करता है न इसमें उसकी आसक्ति है ।उसका दुःख क्या है ? प्रभु की विस्मृति । माँ की गोद से बच्चा उठ जाये तो सारे संसार का सुख एक तरफ और माँ की गोद से बच्चे के उठ जाने का जो दुःख होता है उसके सामने संसार के सुख व दुःख एक तरफ । उसके मन में जब ऐसे सुख की अभीप्सा उत्पन्न हो जाती है और उसका अभाव किसी समय होता है उस समय उसके हृदय में जो व्याकुल उत्पन्न होती है वह टूटे फूटे शब्दों में प्रार्थना करता यानि रोता है । सच्ची प्रार्थना यही है । हमारे लिए दुःख वही है क्योंकि हम परमात्मा रूपी माता के बालक है ।

‘उच्च आनंद’ , ‘महा-आनंद’ शुरू शुरू में इनका अनुभव नहीं होता । परन्तु अभ्यास करते करते , प्रार्थना करते करते जब भगवान की स्मृति सदा रहने लगती है तब यह भाव उत्पन्न होता है कि हे प्रभु ! कभी आपकी विस्मृति न हो जाए । उससे अच्छा है कि मेरी मृत्यु हो जाये ।

राम संदेश , जून १९८२